आत्म - कथन

भाग - १

आचार्य सत्यनारायण गोयन्का

आत्म-कथन

भाग - १

आचार्य सत्यनारायण गोयन्का

विपश्यना विशोधन विन्यास

धम्मगिरि, इगतपुरी

© विपश्यना विशोधन विन्यास
सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम आवृत्ति : २००३
पुनर्मुद्रण : २००४, २००५, २००८

मूल्यः रु. ३५/-

ISBN 978-81-7414-241-X

प्रकाशकः
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२ ४०३
जिला- नाशिक, महाराष्ट्र
फोनः ०२५५३-२४४०७६, २४४०८६, २४३७१२,
२४३२३८; फैक्सः ९१-२५५३-२४४१७६
Email: vri_admin@dhamma.net.in
info@giri.dhamma.org
Website: www.vridhamma.org

मुद्रकः
अपोलो प्रिंटिंग प्रेस
जी-२५९, सीकॉफ लिमिटेड, ६९ एम. आय. डी. सी.,
सातपुर, नाशिक-४२२००७, महाराष्ट्र

विषय-सूची

प्राक्कथन [v]

भगवान बुद्ध ने भारत को दुर्बल बनाया १

युद्धपूर्व का बरमा निवास १

मेरा भारत आगमन ३

पं. विद्याधर शास्त्री ४

स्वदेश-प्रेम ६

आजादी में नेताजी का योगदान ११

रक्तरंजित आजादी १२

पुनः जन्मभूमि बरमा लौटा १३

बरमा का सार्वजनीन जीवन १५

नेहरूजी से भेंट १७

साहित्य-सृजन धर्मिता १९

देश की आजादी पर एक कविता १९

गांधी, नेहरू और पटेल २०

महात्मा गांधी २०

सरदार पटेल २०

पं. नेहरू २१

नेताजी सुभाषचंद्र बोस २२

होली की धमाल २३

वीर रस की अन्य कविताएं २५

मीना बाजार २६

बलिदानी पन्ना २७

हिंदी साहित्य का अध्ययन ३१

मेरी शिवभक्ति ३७

एक अन्य घटना ३८

एक और घटना ४०

एक और घटना ४१

रीतिकालीन हिंदी कवि ४४
जातिपांतिजनित दोष ५०
शुद्धिकरण ५१
उपनयन संस्कार ५६
अतिशूद्र का उपनयन संस्कार ५८
जाति-बहिष्कार का भय ५९
छुआछूत की पराकाष्ठा ६०
इस दुर्भावना के कुछ शर्मनाक उदाहरण ६१
इस संदर्भ में एक दर्दनाक घटना ६१
ऐसी ही एक और घटना ६३
छिः कला ६४
जापानी युद्ध तथा तदनंतर ६६
एक व्यक्तिगत दर्दनाक अनुभव ६८
मेरे विद्यार्थी जीवन की कुछ एक स्मृतियां ७१
आर्यसमाज ७३
एक अन्य दर्दनाक घटना ७३
प्रचंड प्रतिक्रिया ७४
वह तूफानी कविता ७५
पूर्वी एशिया के बुद्धानुयायी देश ७७
भगवद्गीता ७८
एक आकस्मिक घटना ७९
तिपिटक ८४
बुद्ध शासन ८७
मेरा भाग्य जागा! ८९
बुद्धवाणी का अध्ययन ९३
देश की सुरक्षा ९६
पूर्व भूमिका ९७

विपश्यना साहित्य **९९**
विपश्यना केंद्र **१०२**

प्राक्कथन

आत्मकथा में आत्मविज्ञापन और आत्मश्लाघन के दूषण प्रत्यक्ष या परोक्षरूप में अंतर्निहित रहते ही हैं, इस खतरे को जानते-समझते हुए भी मैं इस विषय पर यदा-कदा लेखनी उठाता रहता हूं। मैंने इसे आवश्यक इसलिए समझा कि आज के ही नहीं, भविष्य के भी विश्वव्यापी बहुसंख्यक विपश्यी साधकसाधिकाओं की यह जिज्ञासा-पूर्ति हो सके कि मैं अध्यात्म के कैसे वातावरण में जन्मा और पला, तत्पश्चात किनकिन बहुरंगी मंजिलों में से गुजरता हुआ यहां तक पहुँचा। इस जीवन की अब तक की अध्यात्म की बहुआयामी यात्रा में मुझे कबकब, कबं-कबं, कैसेकैसे अनुभव हुए; यह साधकों की केवल कौतूहल-पूर्ति की ही सामग्री बन कर न रह जाय, बल्कि उनका ज्ञानवर्धन भी करे और मार्गदर्शन भी। उनके लिए यह भी स्पष्ट हो जाना आवश्यक है कि यात्रा के किसी भी पड़ाव में से गुजरने का आज मुझे रंचमात्र भी न क्षोभ है, न पछतावा। किसी भी वृद्ध व्यक्ति के अपने बचपन के खेल-खिलौनों से लेकर युवा, प्रौढ़ और परिपक्व अवस्थाओं के सभी खट्टे-मीठे अनुभवों की स्मृतियां होठों पर मुस्कान ही लाती हैं। इससे यह संतोष भी होता है कि अध्यात्म के अमुकअमुक क्षेत्रों में से न गुजरता तो उनके अनुभवों से वंचित रह जाता, अपरिचित रह जाता। शायद धर्म यही चाहता था, या यों कहूं कि मेरे पूर्वजन्मों के संस्कारों की भवधारा यही चाहती थी कि मैं उन भिन्न-भिन्न पड़ावों का स्वयं अनुभव करके अपनी वर्तमान उपलब्धि का सही मूल्यांकन कर सकूं।

चाहता हूं कि इस बढ़ी हुई उम्र की, बढ़ी हुई व्यस्तता में जब तक स्मरणशक्ति कम कर रही है, तब तक जितना हो सके, उतना समय निकाल कर अपने शोधपरक अध्ययन और विपश्यनापरक अनुभवों को शब्दबद्ध कर दूं। मैं अब खूब समझ गया हूं कि नितांत अज्ञान अवस्था के कारण महज लोकप्रचलित मान्यताओं से प्रभावित होकर मैं भगवान बुद्ध

की परम पवित्र और पूर्णतया निष्कलुष शिक्षा के प्रति कितना भ्रांत रहा और इस कारण इसे मानव समाज के लिए, और विशेषकर अपने देश के लिए, हानिप्रद मानता रहा। किसी भी निर्दोष व्यक्ति पर अथवा उसकी निर्दोष शिक्षा पर लगे मिथ्या मनगढंत लांछनों को स्वीकार कर उसे बदनाम करना साधारण नहीं, जघन्य पाप है।

यह मेरा दुर्भाग्य था कि मैं वर्षों इस जघन्य पाप का भागी बना रहा। उस महापुरुष की कल्याणी विपश्यना से लाभान्वित होने के बाद बुद्धवाणी का अनुशीलन करने और तदनंतर अपने यहां के अनेक पौराणिक ग्रंथों का भी अनुशीलन करने पर अपने इस जघन्य दुष्कर्म के प्रति जागरूक हुआ। तब मेरा मानस अपराधजन्य लज्जा से विचलित हो उठा। यह सत्य है कि मैंने यह पाप जानबूझ कर नहीं किया। द्वेष-बुद्धि से अथवा स्वार्थ-बुद्धि से नहीं किया। अहंपोषणहित भी नहीं किया। जो किया, वह सुनी-सुनायी, पढ़ी-पढ़ायी मिथ्या बातों से भ्रांत होकर किया और वर्षों करता ही रहा। इन पाप-कर्मों का कैसा भयानक दुष्परिणाम होगा, इसे जब याद करता हूं तब रोंगटे खड़े हो जाते हैं। दुर्भाग्य से अपने देश में कुछ एक निराधार मिथ्या बातें सदियों से इस प्रकार प्रसिद्धि पा चुकी हैं और सर्वमान्य हो चुकी हैं कि उनसे प्रभावित होकर मेरी तरह लगभग सारे देशवासी जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे इसी जघन्य दुष्कर्म में लिप्त हैं। मुझे यह उचित लगा कि जिस सच्चाई की जानकारी प्राप्त कर मैंने अपने आपको इस दुष्कर्म से उबारा है, उसे अधिक नहीं तो कम से-कम उन लोगों तक अवश्य पहुँचाऊं, जिन्होंने बुद्ध की विपश्यना विद्या का लाभ उठाया है और उठा रहे हैं, ताकि वे वास्तविकता को समझें और अनजाने में इस दोष के भागीदार न बनें।

पूर्वकाल में बुद्ध की शिक्षा पर निराधार लांछन इसी कारण लग सके कि बुद्ध की मूल वाणी और प्रयोगात्मक विपश्यना विद्या देश से कब की विलुप्त हो चुकी थी। सौभाग्य से इतनी सदियों तक पड़ोसी बरमा देश में अपने मौलिक शुद्ध रूप में सुरक्षित रहने के कारण अब यह पुनः स्वदेश लौटी है। विपश्यना विश्व विद्यापीठ के 'विशोधन विभाग' द्वारा आधुनिक वैज्ञानिक युग के नवीनतम उपकरणों का उपयोग करके तिपिटक की संपूर्ण

मूल बुद्धवाणी, उनकी अर्थकथाएं, टीकाएं, अनुटीकाएं आदि पालि के अब तक उपलब्ध सभी ग्रंथों के कुल ५९,१५० पृष्ठों के ९२,८५,७५५ शब्दों को एक सघन तश्तरी (सीडी रोम) में निवेशित कर लिया गया है। साथ-साथ महायानी परंपरा के अनेक संस्कृत ग्रंथ भी निवेशित कर लिये गये हैं। इसके अतिरिक्त छांदस और संस्कृत भाषा के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण ग्रंथ जैसे कि वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृतियां ही नहीं, जैन परंपरा के भी अनेक ग्रंथ जोड़े जा चुके हैं। जो-जो बचे हैं उनके निवेशन का कार्य भी चल रहा है। इस विशाल साहित्य-संग्रह के किसी भी शब्द, पद, श्लोक अथवा गाथा को तत्काल ढूंढ निकालने की सरल और आश्चर्यजनक विधि इस तश्तरी में उपलब्ध है। इस कारण तुलनात्मक अध्ययन द्वारा शोधकार्य में महती मदद मिलती है। जिन विपश्यी साधकों की इस ओर रुचि हो वे इस अनुसंधान में हाथ बटायें, इसका लाभ उठायें और सच्चाई को समझें।

"अहिंसा परमो धर्मः" के पद को लेकर बुद्ध पर यह लांछन लगा कि इसकी शिक्षा देते हुए अहिंसा को उस चरम सीमा तक खींच लिया गया जिससे कि देश कायर, कमजोर और गुलाम हो गया। यह मिथ्या मान्यता अपने देश के अनेक लोगों के मानस में बहुत गहराई से पैठ गयी है। भारत आने के कुछ ही वर्षों बाद मेरी नजर एक लेख पर पड़ी। यह पिलानी से प्रकाशित 'मरुभूमि' नामक मासिक पत्रिका में छपा था। लेख किसी विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के प्रोफेसर द्वारा लिखा गया था। बुद्ध की शिक्षा पर अतिशय अहिंसा का दोष दिखा कर इससे देश की जो अपार हानि हुई उसकी व्याख्या की गयी थी। इसे पढ़ कर लेखक पर बड़ी करुणा जागी। मैं भलीभांति समझ सकता था कि लेखक को न भगवान बुद्ध से शत्रुता है और न उनकी शिक्षा से। उसका लेख न द्वेषभाव से लिखा गया था, न किसी सांप्रदायिक पक्षपात से प्रभावित होकर। इतिहास की पाठ्यपुस्तकों अथवा अन्यत्र जो पढ़ा होगा और जो स्वयं विद्यार्थियों को पढ़ाता होगा, उसी के आधार पर लिखा होगा। परंतु उसमें तथ्यों की अनेक भूलें थी। मैंने उसे इन भूलों की ओर इशारा करते हुए एक लंबा पत्र लिखा।

फिर सोचा कि इससे क्या लाभ होगा? इस आशय के लेख अनेक पत्र-पत्रिकाओं में यदाकदा प्रकाशित होते ही रहते हैं। उनमें से कुछ तो स्पष्ट ही सांप्रदायिक द्वेषभाव से लिखे होते हैं। परंतु अधिकांश लेखों का आधार तथ्यों की जानकारी न होना ही है। ऐसी भूलें लोग न करें, विशेषकर विपश्यी साधक तो न ही करें; इसी उद्देश्य से इस महत्त्वपूर्ण विषय पर अब तक किये गये अनुसंधान के आधार पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है जिससे लोग सच्चाई को जानें, समझें और निराधार निंदा के दोष से बचें। धर्म के क्षेत्र में सच्चाई का आधार ही कल्याणप्रद होता है।

धर्मपथ के सभी पथिकों का मंगल हो! कल्याण हो!

कल्याणमित्र,
सत्यनारायण गोयन्का

भगवान बुद्ध ने भारत को दुर्बल बनाया

क्या भगवान बुद्ध ने भारत को सचमुच दुर्बल बनाया? क्या उनकी शिक्षा देश की गुलामी का कारण बनी?

– "हां, यह सर्वथा सत्य है। वैसे तो भगवान बुद्ध महान थे। अपनी महती करुणा के कारण वे विश्ववंद्य हुए। परिणामस्वरूप, सारे संसार में भारत गौरवान्वित हुआ। यह सच है। परंतु यह भी उतना ही सच है कि उनकी 'अहिंसा परमो धर्मः' की राष्ट्रघातक शिक्षा ने देश की सैन्य शक्ति को दुर्बल बना दिया। देश में शूरवीरों की अपेक्षा गृहत्यागी, शांतिप्रचारक भिक्षुओं के विशाल संघ की अधिक कद्र होने लगी। उनकी शस्त्रविरोधी शिक्षा से भ्रांत होकर भारत के वीर सम्राट अशोक ने कलिंग में जीती हुई बाजी को हार में पलट कर अपनी तलवार तोड़ दी और युद्ध न करने की राष्ट्रविरोधी प्रतिज्ञा कर ली। इसका कुप्रभाव सदियों तक राष्ट्र पर पड़ता रहा। बाहरी आक्रमणकारियों का सामना कर सकने का सामर्थ्य कमजोर पड़ता गया। परिणामस्वरूप देश बाहरी हमलों का शिकार बनता गया और गुलामी की जंजीरों में जकड़ा जाता रहा। इससे बढ़ कर देश का अहित और क्या हो सकता था भला?"

किशोर अवस्था से युवावस्था तक मैं इन्हीं अथवा इन जैसे विचारों से पूर्णतया प्रभावित था। युद्धपूर्व बरमा में रहते हुए भगवान बुद्ध के महाकारुणिक व्यक्तित्व के प्रति जितनी श्रद्धा उमड़ी थी उसके साथ-साथ उनकी शिक्षा के प्रति उतनी ही दोषदृष्टि भी उत्पन्न हुई थी। उन दिनों उनकी शिक्षा में जो अनेक खामियां देखा-सुना करता था उनमें यह कमी सबसे प्रमुख थी और हानिकारक भी।

युद्धपूर्व का बरमा निवास

युद्धपूर्व के बरमा में रहते हुए बचपन में रंगून से प्रकाशित हिंदी का 'बरमा समाचार' पत्र मुझे अपने बाबाजी बसेसरलालजी को पढ़ कर सुनाना

पड़ता था। वृद्धावस्था के कारण उनकी आंखें कमजोर हो गयी थीं। अतः वे स्वयं नहीं पढ़ पाते थे। उन्हें अखबार का बहुत शौक था, क्योंकि भारत की राजनीति में वे बहुत दिलचस्पी रखते थे। यह १९३० के दशक का प्रथम भाग था। अखबारों में कांग्रेस और गांधीजी की गतिविधियां रोज सुर्खियों में छपा करती थीं। बाबाजी प्रगाढ़ राष्ट्रप्रेमी थे। उस उम्र में भी देश की आजादी के लिए उद्विग्न रहते थे। इस कारण उस छोटी उम्र में ही मेरे मानस पर भी उनके राष्ट्रीय विचारों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

जरा बड़ा हुआ, तब स्थानीय आर्यसमाज के संपर्क में आया। सौभाग्य से स्कूल में भी अच्छे अध्यापक मिले। अतः किशोर अवस्था में ही भारत की राजनीतिक गतिविधियों में दिलचस्पी बढ़ती गयी। उन दिनों मानस में एक ऐसी विचारधारा जागने लगी कि गांधीजी पूज्य हैं, वरेण्य हैं क्योंकि उन्होंने अकेले सारे देश में स्वाधीनता के लिए एक प्रबल चेतना जगायी है, जोकि सचमुच बहुत अद्भुत है। परंतु उनके 'प्रेम और अहिंसा' के अवलंबन मात्र से स्वतंत्रता नहीं मिल पायगी। साम्राज्यवादी सत्ता शस्त्रों पर टिकी है। हमें भी शस्त्रों का सहारा लेना आवश्यक है। उन्हीं दिनों यह बात भी ध्यान में आयी कि गांधीजी पर बुद्ध के प्रेम और अहिंसा का बहुत गहरा प्रभाव है जो कि देश में कदापि सशस्त्र क्रांति नहीं जगने देगा। बुद्ध के व्यक्तित्व के प्रति सम्मान और श्रद्धाजनक आकर्षण रखते हुए भी उनकी चरम अहिंसावादी शिक्षा के प्रति मेरे मानस में पर्याप्त अविश्वासभरा विकर्षण-प्रतिकर्षण था।

इसी कारण गांधीजी के प्रति श्रद्धा और सम्मान रखते हुए भी मेरा मानस सशस्त्र क्रांतिकारियों की ओर अधिक झुका था। मन्मथनाथ गुप्त की 'भारत में सशस्त्र क्रांति का इतिहास' जैसी सरकार द्वारा जब्त हुई पुस्तकें मैं बरमा के एक परिचित पुस्तक विक्रेता के माध्यम से छिपे-छिपे मँगवा कर बड़े शौक से पढ़ा करता था। भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु तथा चंद्रशेखर आजाद जैसे क्रांतिकारी मेरी नजरों में महान थे। सुभाषचंद्र बोस ने जब अंग्रेजों को चकमा देकर देश के बाहर निकलने में सफलता प्राप्त की तब मुझे अपार हर्ष हुआ था।

मेरा भारत आगमन

जापानी युद्ध आरंभ होने पर १८ वर्ष की अवस्था में मैं सारे परिवार के साथ बरमा के दुर्गम सीमावर्ती पर्वतों को पैदल लांघ कर मार्च १९४२ में भारत आया था और राजपूताना स्थित बीकानेर राज्य के चूरू नगर में अपने पुरखों की हवेली में मैंने शरण ली थी। वहां रहते हुए जिनसे संपर्क हुआ वे सभी भगवान बुद्ध के परम प्रशंसक थे परंतु उनकी शिक्षा के घोर निंदक। अतः यही विचारधारा दिन-पर-दिन मेरे मन में पुष्ट से पुष्टतर होती चली गयी।

जब भारत पहुँचा तब वहां का राजनीतिक वातावरण खूब गरमाया हुआ था। ८ अगस्त के दिन गांधीजी ने "करो या मरो" की क्रांतिकारी घोषणा की। उनका यह रुख मुझे बहुत भाया। परंतु वे इस दिशा में कोई स्पष्ट निर्देश दे पाते, इसके पहले ही सभी शीर्षस्थ नेताओं के साथ उन्हें बंदी बना लिया गया। देश में स्थान-स्थान पर हिंसात्मक क्रांति भड़क उठी। मेरा मानस उसमें भाग लेने के लिए तड़प उठा। परंतु मैं भारत के लिए बिल्कुल नया था। समझ नहीं पा रहा था कि क्या करूं? फिर भी एक नादानी कर बैठा।

तब तक हमारे परिवार ने चूरू में एक छोटी-सी दूकान खोल ली थी। मैं कभी-कभी इसके लिए व्यावसायिक सामान खरीदने दिल्ली जाया करता था। घरवालों को कुछ कहे बिना इस बहाने से मैं दिल्ली चला गया। निरा बचपना ही था। वहां न किसी को जानूं, न पहचानूं। इस देश में आये कुल जमा छह महीने भी नहीं हुए थे। किन क्रांतिकारियों से संपर्क करूं!

आखिरकार इधर-उधर भटकते हुए किसी से पता चला कि दिल्ली कांग्रेस कमेटी का कोई उच्च पदाधिकारी चांदनी चौक में घंटाघर से जरा आगे कटरों के सामने की ओर रहता है। उसका नाम रामचंद्र या ऐसा ही कुछ बताया गया था। अब पूरी तरह स्मरण नहीं। ढूंढते हुए वहां किसी एक

मकान के पहले तल्ले पर उसकी गद्दी में जा पहुँचा। उससे मिला और वहां आने का अपना मकसद कह सुनाया। पहले तो उसने मेरा परिचय पूछा। मैंने उसे सही-सही बता दिया। बरमा से आया हुआ, भारत के लिए बिल्कुल नया। फिर उसने रूखा-सा, निरुत्साहजनक उत्तर दिया। कहा कि हमारे पास कोई स्पष्ट कार्यक्रम नहीं है। गांधीजी ने "करो या मरो" का संदेश तो दिया, पर कोई कार्यक्रम घोषित कर सकने के पूर्व ही वे गिरफ्तार कर लिये गये। इसलिए हम कुछ नहीं कर रहे। मैंने क्रांतिकारियों के बारे में जानना चाहा। विशेषकर जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया और अरुणा आसफअली अथवा इन जैसों के पते जानने की उत्कंठा प्रकट की। उसने बेरुखी की हँसी हँस कर कहा कि उनका अता-पता मालूम होता तो सरकार उन्हें पकड़ न लेती। मैं बहुत निराश हुआ। उस वक्त इतना भी नहीं सोच पाया कि उनका पता मालूम भी हो तो कोई मुझे क्यों बतायगा? हो सकता है वे मुझे कोई सरकारी गुप्तचर समझें! अतः दो दिन दिल्ली में भटक कर हताश हो चूरू लौट आया।

देखा, चूरू ही नहीं, सारे बीकानेर राज्य में आजादी के आंदोलन की कहीं कोई छोटी-मोटी लहर भी नहीं है। वहां रियासतों की 'प्रजा परिषद' नामकी संस्था भी बिल्कुल निष्क्रिय थी। उसके जो दो-एक कार्यकर्ता थे वे राज्य के अधिकारियों की कड़ी नजरों से बचने के लिए 'ब्रिटिश इंडिया' में कहीं जा छिपे थे। मुझे बड़ी निराशा हुई।

पं. विद्याधर शास्त्री

भारत आते ही चूरू की हिंदी विद्यापीठ में मैंने हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की मध्यमा परीक्षा दी थी। वहां की साप्ताहिक साहित्य गोष्ठी में भी भाग लिया करता था। अतः वहां के कुछ एक हिंदी-प्रेमियों से अच्छा संबंध जुड़ गया था। किसी साहित्य गोष्ठी में मैंने थोड़ी-सी भूमिका के साथ अपनी एक कविता पढ़ी। उस गोष्ठी में बीकानेर के प्रसिद्ध विद्वान पं. विद्याधर शास्त्री आये हुए थे। वे मूलतः युक्त प्रांत के थे, पर बीकानेर आ बसे थे। गोष्ठी के बाद उन्होंने मेरी पीठ थपथपायी और कहा कि आश्चर्य है, विदेश में रहते हुए भी तुम इतनी शुद्ध हिंदी लिख-बोल लेते हो।

कुछ दिनों बाद चूरू में एक हिंदी कवि सम्मेलन हुआ, जिसमें अनेक कवियों ने भाग लिया। पं. विद्याधरजी अध्यक्षता कर रहे थे। भाग लेने वालों में मैं भी था। उन्होंने मेरा नाम सबसे अंत में पुकारा। मेरा परिचय देते हुए उन्होंने कुछ एक प्रशंसा के शब्द कहे। मैंने कवितापाठ शुरू किया। बोल थे –

सैनिक सत्वर सजकर चल दे, रण में तेरा आह्वान हुआ।

पहले ही बोल में विद्याधरजी ने वाह-वाह कहा। पर दो-एक पदों के बाद ही कविता ने राष्ट्रीय आंदोलन का रुख अपनाया और स्पष्ट हुआ कि यह आह्वान ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध है। तब मैंने देखा कि उनके चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। सामने दर्शकों में चूरू जिले का तहसीलदार और नगर का थानेदार भी बैठा था। दोनों ने एक-दूसरे की ओर गंभीर भाव से देखा। कविता बहुत लंबी नहीं थी। शीघ्र पूरी हो गयी। अध्यक्ष महोदय ने कवितापाठ करने से तो नहीं रोका, पर शीघ्र ही सभा समाप्त कर मुझे एक ओर ले गये और कहा कि इस प्रकार की राष्ट्रीय उद्‌बोधन की कविताएं यहां नहीं पढ़नी चाहिएं। बीकानेर रियासत इस मामले में बहुत सख्त है। तहसीलदार और थानेदार मेरे मित्र हैं। मैंने तुम्हारे बारे में जो दो शब्द कहे, इससे वे तुम्हारे विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं करेंगे। वे खूब जानते हैं कि बीकानेर दरबार में मेरी अच्छी पहुँच है। मेरा भाई पं. दशरथ शर्मा राजकुमार कर्णीसिंह और अमरसिंह का निजी शिक्षक है। महाराज गंगा सिंह को हम दोनों भाई बहुत प्रिय हैं। अतः तुम निश्चिंत रहो। अब तो कुछ नहीं होगा। परंतु भविष्य में सतर्क रहना। यह क्षेत्र ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध आंदोलन करने के लिए उपयुक्त नहीं है।

मैंने भी देखा स्वतंत्रता का आंदोलन तो ब्रिटिश शासन के खिलाफ था। वह 'ब्रिटिश इंडिया' में भले चले, यहां के लिए नितांत अप्रासंगिक था। अतः बात समझ में आयी। राज्य मुझ पर कोई कड़ी कार्यवाही करेगा, इस डर से नहीं, परंतु जब यह देखा कि वहां कोई राष्ट्रीय आंदोलन विद्यमान ही नहीं है और न ही ऐसी कविताओं द्वारा उसके जाग उठने की रंचमात्र भी संभावना है तो उस ओर प्रवृत्त होना निरर्थक लगा। अतः हताश होकर उससे मुँह मोड़ लिया। परंतु मेरे मानस में राष्ट्रीय चेतना के भाव जरा भी कम नहीं हुए।

स्वदेश-प्रेम

उन दिनों मन में यही भाव प्रबल रहता था कि सारे भारत में देश-प्रेम की और वीररस की कविताओं का खूब प्रचार-प्रसार होना चाहिए। मैं स्वयं भी हिंदी और राजस्थानी के वीररस के साहित्य की ओर आकर्षित हुआ। तत्संबंधी साहित्य का खूब अध्ययन भी किया।

मुझे लगा कि गांधीजी द्वारा प्रेम और अहिंसा के आधार पर जगाये गये जन-जागरण के साथ-साथ देश में सशस्त्र क्रांति को भी प्रोत्साहन मिलना चाहिए। भगवान बुद्ध ने लोगों को 'अहिंसा परमो धर्मः' की शिक्षा दी और शस्त्र त्याग कर जिस निवृत्ति मार्ग का प्रचार किया उससे देश का शौर्य और वीर्य कमजोर हुआ। उसे पुनः प्रोत्साहित करके जगाना आवश्यक है। इसके लिए वीररस का साहित्य अत्यंत उपयोगी है। अतः इसके अध्ययन के लिए मेरा रुझान तेज हुआ। मुझे यह देख कर प्रसन्नता हुई कि देश के कतिपय साहित्यकारों ने भी देशप्रेम की उद्‌बोधक कविताओं का सृजन किया। इससे गांधीजी के अहिंसात्मक आंदोलन को भी बल ही मिला। मेरी अपनी रुचि भी उस ओर खूब बढ़ती गयी।

भूषण मेरा अत्यंत प्रिय कवि था। उसके शौर्य-उत्तेजक बोल मुझे बहुत प्रिय लगते थे। जैसे कि –

इन्द्र जिमि जम्भ पर, वाडव ज्यों अंभ पर,
रावण सदंभ पर, रघुकुलराज है।

पौन वारिवाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर, राम द्विजराज है।

दावा द्रुमदंड पर, चीता मृगझुंड पर,
भूषण वितुंड पर, ज्यों मृगराज है।

तेज तमअंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों म्लेच्छवंस पर, सेर सिवराज है।

गोस्वामी तुलसीदास की कवितावली में लंकायुद्ध के प्रसंग भी अत्यंत प्रेरक थे। जैसे कि –

हाथिन सों हाथी मारे, घोड़े घोड़े सों संहारे,
रथनि सों रथ, विदरनि बलवान की।

चंचल चपेट चोट, चरन चकोट चाहैं,
हहरानी फौजें, भहरानी जातुधान की।

बार-बार सेवक-सराहना करत राम,
तुलसी सराहे रीति, साहेब सुजान की।

लांबी लूम लसत, लपेट पटकत भट,
देखौ-देखौ, लखन! लरनि हनुमान की।

कवि सूरजमल्ल की वीर-सतसई के युद्धोत्तेजक दोहों का तो कहना ही क्या? जैसे कि –

मायड़ एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप।
अकबर सूत्यो ओझकै, जाण सिराणै साप॥

अथवा

जणै तो एहड़ा पूत जण, के सायर के सूर।
नातर रहिजै बांझड़ी, मति गँवाए नूर॥

अथवा

सुत मरियो हित देस रै, हरख्यो बंधु समाज।
मां नहँ हरखी जलम दे, जितनी हरखी आज॥

लोकगीतों में आल्हा-ऊदल के बोल बड़े प्रभावशाली लगते थे। जब कोई आल्हा को धिक्कारता हुआ कहता है –

आल्हा आल्हा सुन रै आल्हा, आल्हा तेरा बुरा हो जाय।...

तो इसे सुन कर आल्हा का वीरत्व जागता है और वह उछल-उछल कर शत्रु सेना के सैनिकों के सिर काटता है। तब यह जीवंत चलचित्र आंखों के सामने नाच उठता है –

एडी टेके पंजा टेके, सावुत पैर टिकन का नायँ।

आधुनिक काल की कविताओं में सुभद्राकुमारी चौहान की यह वीररसवाहिनी कविता अत्यंत लोकप्रिय थी –

बुंदेलों हरबोलों के मुँह, हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी॥

ऐसी कविताएं मुझे अत्यंत प्रिय लगती थीं।

श्याम नारायण पांडेय की हल्दीघाटी में –

बढ़े चलो, बढ़े चलो! ...

का सैन्य-संगीत भी बड़ा प्रेरणादायक लगता था।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की यह विप्लवी कविता भी समयानुकूल थी –

कवि कुछ ऐसी तान सुना दे, जिससे उथल-पुथल मच जाए।
एक लहर इधर से आए, एक उधर से आए॥

इत्यादि...

ऐसे ही माखनलाल चतुर्वेदी के 'एक फूल की चाह' के ये प्रेरक बोल सदा जबान पर चढ़े रहते थे –

मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि हित शीष चढ़ाने, जिस पथ जाते वीर अनेक॥

इसी प्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी का यह राष्ट्रीय उद्घोष भी कम प्रेरणास्पद नहीं था –

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नरपशु निरा है और मृतक समान है॥

गहन देशभक्ति की भावनाओं से सराबोर इकबाल के ये अमर बोल जन-जन के मानस में देशप्रेम के उदात्त भाव भरते थे –

सारे जहां से अच्छा, हिंदोस्तां हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी, यह गुलिस्तां हमारा॥

और फिर राष्ट्रीय एकता की आवाज बुलंद करता हुआ यह तेज तराना –

मजहब नहीं सिखाता, आपस में बैर करना।
हिंदी हैं हम, वतन है हिंदोस्तां हमारा॥

इसके साथ-साथ एक ओर पं. ब्रजनारायण चक्रवक की वतन के लिए मर मिटने की अमर चाह –

बुलबुल को गुल मुबारक, गुल को चमन मुबारक।
हम बेकसों को अपना, प्यारा वतन मुबारक॥

गुंचे हमारे दिल के, इस बाग में खिलेंगे।
इस खाक से उठे हैं, इस खाक में मिलेंगे॥

तो दूसरी ओर रामप्रसाद बिस्मिल की देश पर कुर्बान होने की यह तहेदिल तमन्ना –

सरफरोशी की तमन्ना, अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना, बाजुए कातिल में है॥

और फिर शहीदों की याद का यह मार्मिक गुणगान –

शहीदों की चिताओं पर, लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पे मरने वालों की, यही बाकी निशां होगा॥

और इन सब के बीच समवेत स्वर में गूंजती हुई अनेक देशभक्तों की यह प्रखर ललकार –

छीन सकती है नहीं, सरकार वन्देमातरम्।
हम गरीबों के गले का, हार वन्देमातरम्॥

हाथ में हो हथकड़ी और बेड़ियां हों पांव में।
गायेंगे इनको बजा कर, गीत वन्देमातरम्॥

देश की स्वतंत्रता के लिए वीर रस की कविताओं का यह प्रबल प्रवाह, वतन की आजादी के लिए मरमिटने का यह बलिदानी सैलाब, देश के लिए

कुर्बानी का यह प्रभावी माहौल, राष्ट्रीय एकता के लिए जगाया गया यह भावनात्मक वातावरण, समय की सही मांग थी और तत्कालीन साहित्यकारों ने इसकी यथाशक्ति पूर्ति की। अतः उन राष्ट्रीय कवियों और कौमी शायरों के प्रति कृतज्ञताभरी सराहना से मन भर-भर उठता था। सारे देश में छायी हुई बुजदिली और मुर्दादिली को दूर करने का और कोई उपाय नहीं था।

आजादी में नेताजी का योगदान

राष्ट्रीय जागृति के इस तूफानी माहौल में जहां गांधी, नेहरू और पटेल जैसे दिग्गज नेताओं के प्रति असीम श्रद्धा उमड़ती रहती थी वहां इस सच्चाई के प्रति भी प्रभूत जागरूकता थी कि देश की आजादी में नेताजी और उनकी सशस्त्र आजाद हिंद फौज का कितना बड़ा हाथ है। नेताजी का दक्षिण-पूर्वी एशिया और विशेषकर बरमा में आगमन और आजाद हिंद सरकार तथा आजाद हिंद फौज की स्थापना, इम्फाल की पहाड़ी घाटियों में **'चलो दिल्ली'** का नारा बुलंद करते हुए हमारी उस राष्ट्रीय फौज की कुर्बानियां, इन सब को कोई कैसे भूल सकता है भला? जब लालकिले के साम्राज्यवादी न्यायालय में इस फौज के बंदी सेनानायकों पर ऐतिहासिक मुकदमे चले तब बचावपक्ष के शीर्षस्थ वकील भूलाभाई देसाई के साथ-साथ पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी पहली बार वकालत का चोंगा पहना। उन दिनों उन मुकदमों की कार्यवाहियों के सनसनीखेज विवरण दैनिक पत्रों में नित्य प्रकाशित होने लगे। इससे सारे राष्ट्र की चेतना में विद्युत का-सा संचार हो उठा। एक महत्त्वपूर्ण घटना यह घटी कि ब्रिटिश सरकार की भारतीय समुद्री सेना में बगावत जागी। इन घटनाओं की सुर्खियों ने मिल कर देश भर में जो प्रबल तूफान उठाया, उसने भारत को आजादी का ताज पहनाया।

रक्तरंजित आजादी

देश आजाद तो हुआ, परंतु दुर्भाग्यवश राष्ट्रीयता के साथ-साथ जिस विषैली सांप्रदायिकता का खुला प्रचार हुआ उसके कारण आजादी की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी।

भारत माता की पावन देह का निर्मम अंग-विच्छेद हुआ और इसके साथ-साथ देश के लाखों लोगों को अमानुषिक अत्याचारों में से गुजरना पड़ा। संयुक्त परिवार के सगे भाइयों में भी जब पैतृक संपत्तियों का बँटवारा होता है तब उस जद्दो-जहद में अकसर अत्यंत कटुता का वातावरण पैदा हो जाता है। परंतु बँटवारे के बाद विवाद शांत हो जाता है, कटुता दूर हो जाती है और पुनः प्यार का वातावरण बन जाता है। लेकिन देश के इस बँटवारे से उत्पन्न हुई कटुता दूर होने की अपेक्षा दिन-पर-दिन बढ़ती ही गयी। इसमें विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों का स्वार्थभरा हाथ स्पष्ट नजर आता था। इस अवस्था में देश की बची-खुची अखंडता को बनाये रखने के लिए सांप्रदायिकता और जातीयतामुक्त देशप्रेम की राष्ट्रीय चेतना जगायी जा रही थी, यह मुझे प्रिय लगती थी।

स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों सदियों की अहिंसाजन्य निष्क्रियताभरी कायरता पर प्रहार करते हुए देशप्रेम की जो प्रबल राष्ट्रीय चेतना जगी थी वह स्वाधीनता के बाद कहीं ठंडी न पड़ जाय, यह चिंतन मुझे समीचीन लगता था। उचित यही था कि जिन-जिन विचारधाराओं के कारण देश सदियों तक गुलामी की यंत्रणा से आक्रांत रहा, उन्हें दूर रख कर राष्ट्रीय एकता के साथ-साथ देश की रक्षा के लिए स्वयं को उत्सर्ग कर देने की उदात्त भावना पुनः प्रबल होती जाय, जिससे कि देश की स्वायत्तता अक्षुण्ण बनी रह सके।

पुनः जन्मभूमि बरमा लौटा

युद्ध समाप्त होते ही मैं पुनः बरमा लौट आया और वहीं बस गया। युद्ध के दौरान भारत रहते हुए कुछ समय मैंने बीकानेर रियासत में बिताया, जहां राष्ट्रीय आंदोलन का नामोनिशान नहीं था। इसके बाद युद्धकाल का शेष समय मालाबार (अब केरल) के एक छोटे नगर 'कन्नानोर' में बिताया। वहां मेरे लिए आजीविका का साधन तो संतोषजनक था परंतु सामाजिक और राष्ट्रीय कार्यक्रमों से जुड़ने का अवसर नितांत शून्य था। अतः बंदिनी भारतमाता को बंधनमुक्त करने में कुछ सहयोग दे पाने की अपनी असमर्थता को व्यक्त करते हुए मात्र एकाध कविताएं लिखी गयीं। जैसे –

कैसे खोलूं मां के बंधन!
बंदिनि मां की लख दशा दीन,
भर भर आते हैं युगल नयन। ...

ये रचनाएं स्वान्तःसुखाय ही बन पायीं। वहां सुनाता भी किसे? मद्रास की भांति वहां दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की कोई शाखा भी नजर नहीं आयी।

वैसे केरल की धरती बहुत मनोरम है। बारहों महीने हरियाली ही हरियाली। पहली बार यह देख कर मन प्रसन्नता से भर उठा कि धरती माता अपने परिश्रमी बच्चों को कितना अमूल्य वरदान देती है। वहां वर्ष में दो-दो ही नहीं, कभी-कभी तीन-तीन फसलें भी उगायी जाती हैं। यह देख कर बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ। लोग भी भले, भाषा भी कितनी प्यारी! कितनी मीठी! गरीब और अमीर सब के घर स्वच्छ, साफ। उतने ही स्वच्छ वहां के नर-नारी। धनी और निर्धन के लगभग एक-जैसे कपड़े। सब के वस्त्र-परिधान स्वच्छ, श्वेत और उजले। शिक्षा का तो कहना ही क्या? जिस बस में बैठ कर मैं अकसर कन्नानोर से माहे जाया करता था, उसका ड्राइवर था बी.ए., और कंडक्टर एम.ए., वह भी अंग्रेजी साहित्य में!

परंतु हिंदी-भाषी संगी-साथियों के बिना मुझे वहां का जीवन फीका-फीका लगता था। दिन-रात धंधे में ही मशगूल। इस क्षेत्र में आशातीत सफलता मिली। वहां रहते हुए जीवन के लगभग प्रथम व्यावसायिक अनुभव से यह स्पष्ट हुआ कि सरकार जब-जब व्यापार पर कंट्रोल करती है और लाइसेंस, परमिट तथा कोटा का राज्य स्थापित करती है तब-तब या तो व्यापारीवर्ग कमाता है अथवा भ्रष्ट शासनाधिकारी। जिनके लिए कंट्रोल स्थापित किया जाता है, वे इसका कोई विशेष लाभ नहीं उठा पाते।

जीवन के लगभग चार वर्ष प्रकृति के उस प्रदूषण-विमुक्त मनोरम वातावरण में भले लोगों के बीच रहते हुए भी हिंदी की साहित्य-मंडली के अभाव में नीरस और सूखा-सा मानस लिए हुए जब जन्मभूमि बरमा लौटा तब मन प्रसन्नता से भर उठा। लगभग पांच वर्षों के बिछोह के बाद पुनः अपनी मां की ममतामयी गोद में आ बैठा। वहां कोई कमी नहीं थी। वह भी मनोरम देश जिस पर प्रकृति की प्रभूत कृपा, वहां के लोग भी स्वच्छ, साफ और भले तथा व्यापार के लिए भी भरपूर निर्बाध अवकाश। इन सब से बढ़ कर समान रुचि वाले संगी-साथियों का सहयोग और सार्वजनीन सेवा के लिए इतना विस्तृत क्षेत्र। सब मिला कर मानस में प्रसन्नताभरी संतुष्टि व्याप्त हो गयी। जीवन में कोई कमी महसूस नहीं हुई।

बरमा का सार्वजनीन जीवन

वहां पहुँचते ही व्यापार-धंधे में जुट गया। यह आवश्यक था। फिर भी सार्वजनीन कार्यों के लिए पर्याप्त समय निकालता रहा। युद्धोत्तर बरमा में 'बरमा मारवाड़ी चैंबर ऑफ कामर्स' की पुनःस्थापना में सहयोग दिया और उसका अध्यक्ष बना। स्वतंत्र बरमी सरकार के व्यापार मंत्रालय की एक सलाहकार समिति का भी सदस्य बना। आगे जाकर जिन्होंने बरमी नागरिकता ग्रहण की उनके लिए कुछ साथियों से मिल कर 'रंगून चेंबर ऑफ कॉमर्स एण्ड इंडस्ट्रीज' की स्थापना की और कुछ वर्षों तक उसका अध्यक्ष पद भी संभाला। इन सब ने जीवन को बहुत व्यस्त बनाया। इनके अतिरिक्त रामकृष्ण मिशन सोसायटी की मैनेजिंग कमेटी का सक्रिय सदस्य होने के कारण भारतीय सांस्कृतिक आयोजनों में भाग लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इसी प्रकार 'रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम' की मैनेजिंग कमेटी की सदस्यता द्वारा वहां की अस्पताल की सेवा का भी पुण्यावसर प्राप्त हुआ। युद्ध आरंभ होने पर मांडले छोड़ते हुए आर्यसमाज से जो संपर्क टूट गया था वह रंगून आने पर स्थानीय आर्यसमाज से पुनः जुड़ गया। इससे मन बहुत प्रसन्न हुआ। परंतु इन सारी सार्वजनिक प्रवृत्तियों में सबसे अधिक प्रसन्नता की स्थिति यह बनी कि अपने परम मित्र डॉ. ओम प्रकाश और गौतम भारद्वाज आदि के साथ मिल कर युद्धोत्तर बरमा में अखिल ब्रह्मदेशीय हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना की। उसकी अनेक शाखाएं बरमा में खोल कर हिंदी के पठन-पाठन का वातावरण तैयार किया। 'हिंदी विद्यापीठ' जैसी रात्रि पाठशालाओं और पाक्षिक 'साहित्य गोष्ठियों' के आयोजनों ने युद्धकालीन केरल-निवास की मानसिक रिक्तता को पूरा भर दिया। इसके अतिरिक्त 'बरमा-भारतीय कलाकेंद्र' की स्थापना कर उसके रंगमंचीय आयोजनों में भी अपने आपको खूब व्यस्त रखा। दैनिक 'प्राचीप्रकाश', साप्ताहिक 'प्रवासी' और मासिक 'ब्रह्मभारती' जैसी हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं

को सहयोग देते हुए बरमा में हिंदी के लिए उपयुक्त वातावरण बनाये रखने में व्यस्त रहने के कारण मन आनंदविभोर रहता था।

बरमा लौटने के थोड़े ही समय बाद कुछ एक साथियों से मिल कर 'आल बरमा-इंडियन कांग्रेस' की भी स्थापना की और सारे देश में उसकी लगभग पचास शाखाएं स्थापित कीं। इस संस्था का कोई राजनीतिक लक्ष्य नहीं था और न ही ऐसा कोई कार्यक्रम था। इसका उद्देश्य केवल यही था कि स्वतंत्र बरमा की सरकार ने बरमा निवासी विदेशियों के लिए जो नये कानून-कायदे बनाये, उनसे वहां बसे हुए अनपढ़ भारतीय किसानों और मजदूरों को अवगत कराया जाय। उनके आवासीय कागजात दुरुस्त करवाये जायं। उनके भारत आने-जाने के लिए सरकारी अनुमति उपलब्ध करायी जाय।

नेहरूजी से भेंट

बरमा में इंडियन कांग्रेस की स्थापना और भारत तथा बरमा दोनों देशों की स्वतंत्रता के कुछ समय पश्चात भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों की यात्रा पर निकले और दो दिन रंगून रुके। इस यात्रा में 'आल बरमा-इंडियन कांग्रेस' के हम चार मुख्य पदाधिकारियों से वार्तालाप के लिए उन्होंने पर्याप्त समय दिया। बरमा में सदियों से बसे हुए बहुसंख्यक तथा कुछ वर्षों से बसे अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक भारतीयों की वर्तमान नयी परिस्थिति में उत्पन्न विविध प्रकार की समस्याओं पर हम उनसे परामर्श किया चाहते थे। नेहरूजी ने इन सभी समस्याओं की गंभीरता पर ध्यान देते हुए फुरसत से बातचीत की। बरमी नागरिकता संबंधी प्रश्न पर उनका सुझाव स्पष्ट था। जो प्रवासी भारतीय अल्पकाल के लिए केवल आजीविका हेतु यहां बसे हैं वे भले भारतीय नागरिक बने रहें, परंतु जो पीढ़ियों से यहीं रहते हैं और भविष्य में भी यहीं रहना चाहते हैं उनके लिए इस देश की नागरिकता ग्रहण कर लेना ही उचित है। और यह भी भलीभांति समझ लेना चाहिए कि यहां के नागरिक हो जाने पर उन्हें इस देश के मूल निवासियों के साथ पूर्णतया समरस हो जाना होगा। उनके सुख-दुःख में साथ देना होगा। इस देश के प्रति पूर्ण वफादारी बरतनी होगी। उन्हें यह भी नहीं समझना चाहिए कि बरमा की नागरिकता ग्रहण करते हुए वे भारत के प्रति गद्दारी कर रहे हैं। नेहरूजी का यह परामर्श हमारे लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ।

नेहरूजी से हमारी वार्ता निर्धारित समय के पहले समाप्त हो गयी। सायंकाल ६ बजे हमें उनके साथ 'यूनियन ऑफ बरमा क्लब' के एक सार्वजनिक आयोजन में भाग लेने के लिए जाना था। आध घंटे का समय बाकी था। मैंने पंडितजी को सुझाव दिया कि इस बीच हम भारत के अंतिम बादशाह बहादुर शाह जफर के मजार पर हो आयें। मेरे बाबाजी के मन में बरमा के अंतिम नरेश तीबो को अंग्रेजों द्वारा कैद किये जाने और

मृत्यु-पर्यंत अपने देश से इतनी दूर पश्चिमी भारत में उमरकैद करके रखे जाने की बहुत पीड़ा थी। उनकी यह मानसिक पीड़ा मुझे बाल्यावस्था में उनसे विरासत में मिली थी। युवावस्था में जब यह जाना कि भारत के अंतिम मुगल बादशाह की भी अंग्रेजों ने यही दुर्गति की, उसे बरमा में जीवनभर कैद रखा गया तो उसके प्रति मेरे मन में गहरी हमदर्दी जागी हुई थी। उस शायर बादशाह के ये दर्दभरे बोल मेरे हृदय की किसी दुखती रग को यदाकदा छेड़ देते थे –

है कितना बदनसीब जफर, दफन के लिए,
दो गज जमीं भी न मिली, कूए यार में।

इसी हमदर्दी के कारण मैंने नेहरूजी के सामने यह प्रस्ताव रखा था। परंतु इसकी अत्यंत अप्रत्याशित अप्रिय प्रतिक्रिया हुई। पंडितजी से हमारी अढ़ाई घंटे की वार्ता बड़े सौम्य वातावरण में हो रही थी। परंतु यह सुझाव सुनते ही वे झुंझला उठे। उन्होंने कहा, 'जिस व्यक्ति ने हमारे देश की आजादी खो दी उसके मजार पर क्या करने जायं?' मेरा मित्र और 'बरमा भारतीय कांग्रेस' का जनरल सेक्रेटरी श्री दीनानाथ युद्ध के दौरान नेताजी के साथ बरमा में ही रहा था। उसने बताया कि नेताजी जब यहां आये तब जफ़र की कब्र पर बांह पसार कर देर तक रोते रहे। यह सुन कर नेहरूजी कुछ देर चुप रहे। फिर कहा, चलो!

जब तक हम उस मजार पर पहुँचे तब तक उनकी मुखमुद्रा गंभीर थी। मजार पर दो-चार मिनट मौन खड़े रहे तब भी गंभीरता बनी रही। इसके बाद जब बाहर आकर कार में बैठने लगे तब उनके चेहरे के भाव बदले हुए थे। उन्होंने कहा – वह बेचारा भी क्या करता? देश के छोटे-बड़े सभी नवाब और राजा अपनी जिम्मेदारी को भूल कर भटक गये थे। वे सभी एकजुट हो जाते तो हम अपनी आजादी नहीं गँवाते।

भारत की गुलामी का मूल कारण मैं सदा बुद्ध की अहिंसावादी शिक्षा को ही मानता रहा। परंतु पिछली सदी में हमने जो आजादी गँवायी उसका एक और कारण अब उभर कर सामने आया। आखिर अंग्रेजों से लड़ने के लिए देश के नवाब और नरेश एकजुट क्यों नहीं हो पाये? इसका उत्तर कुछ दिनों बाद स्वाध्याय द्वारा स्वतः मिल गया।

साहित्य-सृजन धर्मिता

बरमा पहुँचने पर यकायक जीवन इतना व्यस्त हो गया, फिर भी मेरा मनपसंद क्षेत्र होने के कारण साहित्यगोष्ठी के लिए अथवा हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के लिए, विशेषकर उनके होली, दीपावली और स्वाधीनता दिवस के विशेषांकों के लिए समयानुकूल लेख और कविताओं का सृजन होता रहा। मेरी रचनाओं में अधिकतर मेरे अंतर का स्वदेशप्रेम अपनी जन्मभूमि बरमा के प्रति और अपने पुरखों की पावन भूमि भारत के प्रति उनकी गौरव गरिमा को प्रदर्शित करते हुए प्रकट होता था। उन दिनों की अनेक रचनाओं में अधिकतर वीररसोत्पादक भाव मुखरित होते थे। भूतकाल में जिन किन्हीं कारणों से हमने अपनी आजादी खोयी हो, परंतु अब तो इस महँगी आजादी को बचाये रखना आवश्यक है। अतः इस क्षेत्र में शिथिलता न आ जाय, यही लक्ष्य रहा।

उन दिनों की लिखी गयी कुछ एक कविताओं के उद्धरण –

देश की आजादी पर एक कविता

आजादी के साथ-साथ देश के बँटवारे का दर्दनाक हादसा हुआ। इसकी वजह से सदियों की गुलामी से मुक्ति पाने की खुशियां गहरी रंजीदगी में बदल गयीं। उस पर अनेक कविताएं लिखीं। उनमें से एक के कुछ बोल –

कहने को तो कह दिया, कि यह है भाई-भाई का बँटवारा।
पर बापू के उर से भी, देखी बहती शोणित की धारा॥

देखे पटेल के पत्थर से सीने के भी दो टूक हुए।
निस्तब्ध नेहरू के नयनों से भी ढुलकी आंसू की धारा॥

यह सुलह हुई या कलह हुई, या पशुता का सम्मान हुआ!

गांधी, नेहरू और पटेल

यद्यपि नेताजी सुभाषचंद्र बोस मेरे मानस के आदर्श स्वतंत्रता-सेनानी थे लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि देश की स्वतंत्रता का नेतृत्व करने वाले अन्य नेताओं के प्रति मैं श्रद्धाशून्य था।

महात्मा गांधी

हजार अहिंसावादी होते हुए भी महात्मा गांधी मेरी नजरों में राष्ट्रपिता थे। युद्ध के बाद बरमा आने के पूर्व मैं गांधीजी को केवल एक बार देख पाया था। तब वे जेल से छूटे ही थे और मद्रास में 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' के महाधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए आये थे। उस समय त्यागराज नगर में उनकी एक विशाल प्रार्थनासभा हुई थी।

गांधीजी की प्रशस्ति में एक गीत बना, जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं –

भारत भू मां के भव्य भान!
फूंका जन जन में नवजीवन,
संचरित किये नवरक्त प्राण,
जग गया देश, उत्साह महान॥
भारत भू मां के भव्य भान!!

सरदार पटेल

लौहपुरुष सरदार पटेल से मैं व्यक्तिगत रूप से नहीं मिल पाया, परंतु १९४९ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का जो वार्षिक महाधिवेशन नाशिक में हुआ था उसमें 'आल बरमा-इंडियन कांग्रेस' के प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने के कारण उस लौहपुरुष को बहुत समीप से देखने का अवसर

प्राप्त हुआ। कुछ दिनों बाद उनका देहावसान हुआ। तब एक शोकसभा में जो कविता पढ़ी, उसके कुछ बोल हैं –

सिरदारां रो सिरदार, चालीस क्रोड़ा रो धनी।
छोड़ चल्यो मझधार, इब कुण खेसी नाव नै?

तू नर माँहलो न्हार, बैर्यां थर-थर धूजता।
इब कुण करै दहाड़, तेरे बिन सिरदारजी?

के इंदर रै राज, रजवाड़ा होग्या घणा?
एको करणै काज, बुलवायो सिरदारजी॥ इत्यादि...

पं. नेहरू

पंडित नेहरू से मेरा व्यक्तिगत संपर्क कई बार हुआ, जिनमें से दो बार का मिलना विशिष्ट था। एक बार जब 'आल बरमा-इंडियन कांग्रेस' के चारों पदाधिकारी उनसे रंगून-स्थित भारतीय दूतावास में मिले। तब वे दो दिन के लिए रंगून रुक कर दक्षिण-पूर्वी यात्रा पर गये थे। उस समय देर तक बातचीत करने का अवसर प्राप्त हुआ। दूसरी बार जब तिपिटक के हिंदी अनुवाद को लेकर वाराणसी में महत्त्वपूर्ण बातचीत हुई।

किसी एक नेहरू जयंती पर बरमा के हिंदी और उर्दू के मिले-जुले कवि सम्मेलन में उनकी प्रशस्ति में लिखी और पढ़ी गयी लंबी कविता के कुछ बोल –

यह सच है गांधी बाबा ने, लड़ना नहीं सिखाया था।
पर यह भी सच है गांधी ने, दबना नहीं सिखाया था।

सबसे करना प्यार, सदा ही सबसे मीठा बोलना।
पर दुश्मन छाती पर हो तो, डरना नहीं सिखाया था।

उस बापू की, उस गांधी की जो सच्ची आवाज है।
वही करेगा रक्षा सचमुच, अब भारत के भाल की॥

जिसको सदा सताती चिंता, जन जन के बदहाल की।
आओ, उसकी जय बोलें, जय जय जवाहरलाल की॥

...

लोग बने खुशहाल कि जिसके ये ही वेद-पुराण हैं।
मुल्क तरक्की करे, कि जिसके कलमा और कुरान हैं॥

कोई भूखा नंगा न हो, जिसका है गुरुग्रंथ यही।
हिंदू मुस्लिम हो ना हो, पर वह सच्चा इंसान है॥

जिसको सदा सताती चिंता, जन जन के बदहाल की।
आओ, उसकी जय बोलें, जय जय जवाहरलाल की॥

नेताजी सुभाषचंद्र बोस

मैं व्यक्तिगत रूप से उनसे कभी नहीं मिल सका, लेकिन युद्ध के बाद जब बरमा वापस लौटा तब मेरे अनेक मित्र साथी ऐसे थे जिन्होंने आजाद हिंद सरकार अथवा आजाद हिंद फौज में उनके साथ काम किया था। उनकी जुबानी नेताजी के बारे में जो कुछ सुना उससे नेताजी के प्रति मन में जो श्रद्धा थी वह कई गुना बढ़ी।

इन्हीं भावों को लिए हुए नेताजी की ५३वीं जन्म जयंती पर रची गयी एक कविता के कुछ अंश –

तेरी वाणी में जादू था, तेरी बोली में था चुंबक।
सब खिंचते जाते थे तुझ तक, जाने कितना था आकर्षक॥

तूने रणबिगुल बजाया तो, उठ बैठा ऐसा कौन नहीं!
तूने 'जयहिंद' पुकारा तो, पत्थर भी रहा न मौन कहीं॥

तेरे तो थे दो बोल और, सोने चांदी के ढेर लगे।
तेरी तो थी ललकार और, सब हिंदुस्तानी शेर जगे॥

घर-घर की रानी निकल पड़ी, झांसी की रानी बन-बन कर।
हर बालक तेरी बालक-सेना में, भरती हो हँस हँस कर॥

हर नौजवान तेरी सेना के लिए स्वयं तैयार हुआ।
सदियों से सोई रग-रग में, फिर नया खून संचार हुआ॥

तूने मांगा था खून यहीं, आजादी देने के बदले।
फिर देखा कितने निकल पड़े थे, जान हथेली पर ले ले॥

कौन कहेगा हार गयी थी, तेरी सेना कोहिमा पर?
हार नहीं थी, जीत बनी वह, सौ-सौ जीतों से भी बढ़ कर॥

तूने चिनगारी सुलगायी, वह आग बनी थी भारत भर में।
तेरे वीरों की गाथा सुन, जोशीली लहर उठी घर घर में॥

उन लहरों ने हो प्रलयंकर, कैसा तूफान जगाया था।
ब्रिटिश हुकूमत को, सातों सागर के पार बहाया था॥

तुझसे प्रेरित हो जाग उठा, सदियों से सोया तेरा भारत।
और गुलामी की जंजीरों से, मुक्त हुआ यह तेरा भारत॥

कैसे भूल सकेगा भारत, तेरी बेमिसाल कुर्बानी।
धरती के जर्रे-जर्रे पर, गूंजे तेरी अमर कहानी॥

आजादी के पश्चात जब भारत की सीमाओं पर युद्ध के बादल मँडराने लगे तब एक बार पुनः स्वदेश प्रेम के तराने और वीर रस की रचनाएं मन में गूंजने लगीं।

होली की धमाल

जैसे सारे भारत में, वैसे ही बरमा में भी जो भारतीय बसे थे उनमें होली के दिनों ऐसी बेहूदगी का उन्माद चढ़ता था जिसे देख कर किसी भी सुसंस्कृत व्यक्ति का सिर लज्जा से नीचा हो जाय। बड़े, बूढ़े, युवक और बच्चे सभी मिल कर ऐसे अश्लील गीत गाते थे जिससे यह त्यौहार कलंकित होता था और कलंकित होती थी भारत की महान सांस्कृतिक मूरत। अतः उन दिनों इसके विपरीत मैंने कई धमाल (होली के अवसर पर विशिष्ट रूप

से गाया जाने वाला राजस्थानी गीत) लिखे। समान दृष्टिकोण रखने वाले मेरे कुछ युवक साथी होली के दिनों इन्हें ही समवेत स्वर में गाते थे। नगाड़े की चोट पर डांडिया के साथ रात देर तक नाचते थे और देश-प्रेम के इन धमालों को सस्वर गाते थे। यद्यपि इन साथियों की संख्या होली के हुड़दंग में सम्मिलित होने वाले अन्य लोगों की अपेक्षा कम होती थी परंतु जोश बहुत अधिक था। अतः ये धमाल खूब प्रचलित हुए। होली के बाद पाक्षिक साहित्यगोष्ठियों में भी यदा-कदा ये धमाल गाये जाते रहे।

भारत के सम्मान में गाया गया एक धमाल –

सो सो सुरगां सै भी म्हानै, लागै प्यारो रै!
भारत म्हारो रै!!

सीस पै बिराजै धोळो हिमालै रो ताज रै!
पगा तळै लहरावे नीलो सिंधुराज रै!
भारत म्हारो रै!

मथुरा म्हारी, गोकुळ म्हारो, कासी, जोध्या म्हारी रै!
कास्मीर जन्नत रो टुकड़ो, कदे न न्यारो रै!
भारत म्हारो रै!

राम अठै ही, क्रिस्न अठै ही, बुद्ध अठै ही जळम्या रै!
बार बार परमेस्सर को भी, जी ललचावे रै!
भारत म्हारो रै!

सो सो सुरगां सै भी म्हानै, लागै प्यारो रै!
भारत म्हारो रै!!

स्वदेश हित अपना बलिदान देने वाले वीरों की याद जगाता हुआ वीर रस का यह धमाल भी उन दिनों बहुत प्रशंसित हुआ।

ओ हो होली खेली रै!
खूनां री होली भारत खेली रै!
होली खेली रै!!

दिल्लीपति बो राय पिथौरो, रजपूतन रो जायो रै!(पृथ्वीराज चौहान)

बारंबार महम्मदियै नै, मार भगायो रै!
होली खेली रै!!

धन-धन री भारत री जननी, तू ही पदमण जायी रै!
जोहर री ज्वाला मँह जळ-जळ, लाज बचायी रै!
होली खेली रै!!

गूंज उठी हल्दीघाटी जद लाग्या हर हर नारा रै!
राणो होली खेली, ले नांगी तरवारां रै!
होली खेली रै!!

खांडा खड़-खड़ खड़क्या, खपरी रणचंडी री भरदी रै!
बैर्यां रै लोया सूं धरती, सारी रँगदी रै!
होली खेली रै!!

सेर सिवाजी दक्खण जायो, भरी वीरता रग रग रै!
न्हार दडूक्यो दिल्ली डोली, डगडग डगमग रै!
होली खेली रै!!

रूप साचळो चंडी धार्यो, बा राणी मरदानी रै!
रणभूमि मँह ताण्डव थिरक्यो, चारूं कानी रै!
होली खेली रै!!

आजादी रो परवानो बो, आजादी पर बळग्यो रै!
धन नेताजी धरती पर, जस अम्मर करग्यो रै!
होली खेली रै!!

वीर रस की अन्य कविताएं

इन राजस्थानी धमालों का धूम-धमाका अधिकतर होली की गींदड़ में ही रंग जमाता था। लेकिन एक-दो बार रंगून के सिटी हाल में भी बड़े समूह

के समक्ष इनका प्रशंसनीय प्रदर्शन हुआ। रंगून की पाक्षिक साहित्यगोष्ठियों के अतिरिक्त बरमा में अन्यत्र हुए हिंदी साहित्य सम्मेलन के बृहत आयोजनों में भी कभी-कभी इन धमालों के साथ अन्य अनेक वीररस की कविताओं का प्रभावशाली पाठ होता रहा।

भारत में प्रसिद्ध हुई कुछ एक वीररसवाहिनी राजस्थानी कविताओं का मैंने हिंदी में अनुवाद किया जिसका करना बहुत सरल था। परंतु जो प्रभाव मूल राजस्थानी में है वह हिंदी में नहीं आ पाया। फिर भी राजस्थानी न समझने वाले बरमानिवासी हिंदी-भाषियों के लिए ये अनुवाद बहुत प्रभावशाली रहे। इनमें से एक है कवि मेघराज मुकुल की 'सैनाणी', दूसरी है समर्थ कवि कन्हैयालाल सेठिया की 'पीथल पातल' (पृथ्वी प्रताप) और तीसरी है श्री गणपत स्वामी की 'लोरी'। तीनों में राजपूती शौर्य का तुमुल शंखनाद है।

कुछ अन्य कविताएं।

निज सतीत्व रक्षाहित एक भारतीय वीरांगना का अद्भुत शौर्य प्रदर्शन और राज्य रक्षाहित एक स्वामिभक्त कर्तव्यनिष्ठ नारी का अनुपम त्याग और बलिदान, इन दोनों ऐतिहासिक घटनाओं पर मैंने भी दो कविताएं लिखीं –

१) मीना बाजार

यह उस ऐतिहासिक घटना पर आधारित है जबकि मुगल बादशाह अकबर समय-समय पर अपने महल में शाही मीना बाजार का आयोजन किया करता था। इसमें केवल सामंतों की महिलाओं का ही समावेश होता था। पुरुषप्रवेश निषिद्ध था, जिससे कि सुंदरियां बिना-झिझक बेधड़क परस्पर आमोद-प्रमोद में निमग्न हो सकें। बादशाह स्वयं छिप कर एक जालीदार झरोखे में से उनकी रूपराशि देख-देख कर अपनी आंखों की तृष्णा तृप्त किया करता था।

एक रात शक्तावत वंश की राजदुलारी और शाही दरबार के सामंत पृथ्वीसिंह राठौड़ की नवल-नवोढ़ा रानी चंपादे इस मीना बाजार में पहली बार सम्मिलित हुई। अकबर उसकी अद्वितीय रूप-माधुरी देख कर

कामासक्त हो उठा। उसने छल करने की ठानी। एक दासी को उसके पास भेज कर कहलाया कि अंतरंग महल में रानी जोधाबाई उससे मिलना चाहती है।

वह भोली बाला क्या समझे? झटपट महलों में पहुँच गयी।
पर अकबर को सम्मुख देखा, झिझकी हिरनी-सी सहम गयी।

तुम डरो नहीं, ना घबराओ, गोरी मुझसे मत झिझक करो।
अकबर मुसकाकर यों बोला, शाही सेजों का भोग करो॥

काली बिछिया का डंक लगा, एडी-चोटी तक भभक उठी।
आखें सुलगीं, नथुने फूले, धोंकनी सांस की धधक उठी॥

छू गये ज्वलित अंगारे ज्यों, आहत चंडी तड़पड़ा उठी।
थर-थर क्रोधित काया कांपी, थर-थर धरती थरथरा उठी॥

बिजली चमकी, नागन झपटी, अकबर औंधे मुँह रपट पड़ा।
चढ़ गयी पीठ पर बाघिन-सी, खंजर गरदन तक झपट पड़ा॥

....

जीवनभर अकबर ने न कभी, पर-नारी को ताका-झांका।
वह शीलवान गुणवान बना, मिल गया सबक भारत मां का॥

इसी प्रकार मेरी यह दूसरी कविता भी साहित्यगोष्ठियों और सम्मेलनों में बहुत प्रशंसित हुई।

२) बलिदानी पन्ना

राणा सांगा की मृत्यु के समय उनका इकलौता पुत्र उदयसिंह बहुत छोटा बालक था। बनवीर को उसका अभिभावक नियुक्त किया गया। समस्त राज्यसत्ता उसके हाथ आ गयी। उसके मन में पाप जागा – यदि बालक उदय को मार दूं तो जीवनभर निष्कंटक राज्य कर सकूंगा। राजकुमार उदयसिंह को पन्नादाई की सेवा-सुश्रूषा में रखा गया था। पन्ना को इस षड्यंत्र की भनक पड़ी कि बनवीर उदय की हत्या करने के लिए इसी ओर आ रहा है। उस बलिदानी मां के मन में स्वामिभक्ति और राज्यभक्ति

का अद्भुत ज्वार उठा और वह राजकुमार के स्थान पर अपने लाडले बेटे का बलिदान देने के लिए प्रस्तुत हुई।

इस कविता के कुछ अंश इस प्रकार हैं –

चल पड़ा दुष्ट बनवीर क्रूर, जैसे कलयुग का कंस चला।
राणा सांगा के, कुम्भा के, कुल को करने निर्वंश चला॥

उस ओर महल में पन्ना के, कानों में ऐसी भनक पड़ी।
वह भीत मृगी-सी सिहर उठी, क्या करे? नहीं कुछ समझ पड़ी।

तत्क्षण मन में संकल्प उठा, बिजली चमकी काले घन पर।
स्वामी के हित मैं बलि दूंगी, अपने प्राणों से भी बढ़ कर॥

धन्ना नाई की कुंडी में, झटपट राणा को सुला दिया।
ऊपर जूठे पत्तल रख कर, यों छिपा महल से पार किया॥

फिर अपने नन्हें-मुन्ने को, झट गुदड़ी में से उठा लिया।
राजसी वसन-भूषण पहना, फौरन पलंग पर लिटा दिया॥

.....

इतने में ही सुन पड़ी गरज, है उदय कहां? युवराज कहां?
शोणित प्यासी तलवार लिए, देखा कातिल था खड़ा वहां॥

पन्ना सहमी, दिल झिझक उठा, फिर मन को कर पत्थर कठोर।
सोया प्राणों का प्राण जहां, दिखलायी अंगुली उसी ओर॥

छिन में बिजली-सी कड़क उठी, जालिम की ऊंची खड्ग उठी।
मां-मां, मां-मां की चीख उठी, नन्हीं-सी काया तड़प उठी॥

शोणित से सनी सिसक निकली, लोहू पी नागन शांत हुई।
इक नन्हा जीवन-दीप बुझा, इक गाथा करुण दुःखांत हुई॥

जबसे धरती पर मां जनमी, जबसे मां के बेटे जनमे।
ऐसी मिसाल कुर्बानी की, देखी न गयी जनजीवन में॥

तू पुण्यमयी तू धर्ममयी, तू त्याग तपस्या की देवी।
धरती के सब हीरे-पन्ने, तुझ पर वारें पन्ना देवी॥

तू भारत की सच्ची नारी, बलिदान चढ़ाना सिखा गयी।
तू स्वामिधर्म पर, देश-धर्म पर, हृदय लुटाना सिखा गयी॥

कवि की वाणी हो गयी धन्य! हो गयी लेखनी धन्य-धन्य!
भारत की जननी धन्य-धन्य! बलिदानी जननी धन्य-धन्य!!

ये पांच-छह हिंदी कविताएं बरमा के हिंदीभाषी साहित्यप्रेमियों के मानस में अनेक बार देश के पुरातन शौर्य, वीर्य, त्याग और बलिदान की भावनाएं जगाया करती थीं।

सम्मेलन समय-समय पर भारत के अनेक मूर्द्धन्य कवियों और साहित्यकारों को आमंत्रित कर सम्मानित किया करता था। एक बार रामधारी सिंह दिनकर को सम्मानित किया। उन्होंने –

मेरे हिमगिरि मेरे विशाल, ...

और

तान तान फण ब्याल कि तुझ पर, मैं बांसुरी बजाऊं। ...

जैसी कविताओं के पाठ से समाँ बांध दिया।

इसी प्रकार एक बार श्याम नारायण पांडेय को आमंत्रित कर सम्मान दिया गया। उन्होंने वज्रासन की मुद्रा में बैठ कर बुलंद आवाज में हल्दीघाटी के हृदयस्पर्शी गीत सुनाये। इन जैसे अनेक अवसरों पर बरमा-हिंदी साहित्य सम्मेलन ने भी अपनी ओर से उपरोक्त वीर रस की कविताओं द्वारा उनका अभिनंदन किया।

ऐसे ही एक अवसर ने मेरे मानस पर बहुत प्रभावी छाप छोड़ी।

मेरी जन्मभूमि मांडले के आर्यसमाज भवन में 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' का अधिवेशन संयोजित किया गया। रात के समय कवितापाठ का आयोजन था। भारत से आये हुए आर्यसमाज के परम संत आनंद स्वामीजी

अधिवेशन की अध्यक्षता कर रहे थे। उनका प्रबल आग्रह था कि मैं उन सभी कविताओं का पाठ करूं। डेढ़ घंटे तक पाठ चलता रहा। पूरा होते ही हमने देखा उन वीतराग संन्यासी की आंखें सजल हो उठीं। वे भावविभोर होकर अपनी कुर्सी से उठे, मेरी ओर बढ़े, मुझे अपनी बाहों में कस कर मेरे गाल चूमे और यह कहा कि देश को ऐसी ही वीररसवाहिनी कविताओं की आवश्यकता है। उस महान देशप्रेमी संत के आशीर्वाद से मैं धन्य हुआ!

यह कहना कदापि सत्य नहीं होगा कि उन दिनों की वीररसप्रधान देशप्रेममयी कविताओं के प्रति मेरा रुझान बुद्ध की अहिंसाप्रधान शिक्षा के विरुद्ध हुई प्रतिक्रिया के कारण ही था। परंतु यह कहना भी गलत नहीं होगा कि उन दिनों मेरे अंतर्मन में बुद्ध की अहिंसामयी शिक्षा के दुष्परिणामों को स्वीकारती हुई एक चिंतनधारा अवश्य अंतर्निहित रहती थी – कभी स्पष्ट, कभी अस्पष्ट।

हिंदी साहित्य का अध्ययन

इस प्रकार युद्धोत्तर बरमा में पारिवारिक, व्यापारिक तथा अन्य अनेक सामाजिक उत्तरदायित्वों को निभाते हुए भी हिंदी के प्रति गहरा लगाव होने के कारण कुछ साहित्य रचना की और साथ-साथ अपने ज्ञानवर्धन के लिए समय निकाल कर साहित्य का गहन अध्ययन-अनुशीलन भी करता रहा। हिंदी साहित्य के इतिहास का आदिकाल यानी वीरगाथाकाल और तदनंतर पूर्व मध्यकाल यानी भक्तिकाल का अवगाहन करके जब उत्तर मध्यकाल यानी रीतिकालीन रचनाओं में से गुजरा तब मन को बहुत धक्का लगा। इनमें विलासप्रधान नख-शिख वर्णन देखा, नायक-नायिकाभेद की विवरणात्मक अभिव्यंजना तथा संयोग-शृंगार की निर्लज्ज अभिव्यक्ति देखी और इसमें भी स्वकीया की अपेक्षा परकीया संयोग को अधिक महत्त्व दिया जाना देखा, पुरातन भारतीय सदाचरण की उत्कृष्ट मर्यादा को धूलधूसरित करते हुए निर्लज्ज स्वैराचार के अश्लील उल्लेख और उदाहरण देखे तो हृदय प्रपीड़ित हो उठा। विशेषकर तब जब यह देखा कि मेरे परम आराध्य भगवान श्रीकृष्ण का चरित्र-हनन किया गया है।

मैं सगुण साकार की प्रगाढ़ भक्ति के वातावरण में जन्मा और पला। इसलिए मुझे भक्तिरस के कवियों के प्रति सदा असीम आकर्षण रहा। सूर और तुलसी के साथ रहीम और रसखान भी मेरे प्रिय कवि थे। उनके बारे में यह ठीक ही कहा गया था –

इन मुसलमान हरिजनन पर, कोटिन हिंदुन वारिये।

रहीम का भक्तिरस का यह दोहा मेरी हिंदी की पाठ्यपुस्तक के प्रथम पाठ का प्रथम दोहा था –

अच्युत चरण तरंगिनी, शिव सिर मालतिमाल।
हरि न बनाओ सुरसुरी, कीजे इन्दवभाल॥

इसी प्रकार रसखान के ब्रजप्रेम की रचनाओं का तो कहना ही क्या –

मानुस हौं तो वही रसखान, बसौं मिल गोकुल गांव के ग्वारन।

....

जो खग हौं तो बसेरो करौं, नित कालिंदी कूल कदम्ब की डारन॥

और फिर –

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूं पुर को तजि डारौं।

...

कोटिन हू कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

इत्यादि ....

उसकी ऐसी रचनाएं मेरे गले का कंठहार बन गयी थीं। परंतु एक बार रसखान की अन्य रचनाओं का अध्ययन करते हुए जब उसका यह एक सवैया मेरे सामने आया, तब उसे पढ़ते ही मेरे हृदय में जहरीले तीर की-सी चुभन हुई। उस कवित्त की पहली तीन पंक्तियां तो निर्दोष थीं, परंतु अंतिम चौथी पंक्ति बिषबुझे तीर के समान मर्मभेदी लगी। सवैया था –

ब्रह्म मैं ढूंढ्यो पुराननि गाननि, वेद रिचा सुनि चौगुनि चायन।
देख्यो सुन्यो कबहूं न कितू, वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥

टेरत टेरत हारि पर्यो, रसखानि बतायो न लोग लुगायन।
देख्यो दुर्यो वह कुंज कुटीर मैं, बैठ्यो पलोटतु राधिका पायन॥

कृष्ण की भक्ति मुझे अपनी माता से विरासत में मिली थी। कृष्ण जगत्पिता ईश्वर हैं – इसी भाव में मैंने बचपन से उनका भजन-पूजन किया, उन्हें नमन-वंदन किया। उनकी बाल्यावस्था से संबंधित सूर के पद चलचित्र की भांति आंखों के सामने गुजरते रहते थे और बहुत प्यारे लगते थे। इनका पाठ करते हुए मन भक्तिरस में डूबा रहता था। उपास्य कृष्ण के बाल्यकाल का वह मोहक रूप बहुत प्रिय लगता था –

घुटुरन चलत रेणु तन मंडित, मुख दधि लेप किये।

अथवा,

मैय्या मोरी मैं नहिं माखन खायो।
मैं बालक बहियन को छोटो, छींको केहि बिधि पायो।
ग्वाल बाल सब गैल पड़े हैं, बरबस मुँह लिपटायो॥

अथवा,

मैया मोहे दाऊ बहुत खिझायो।
मोसो कहत मोल को लीन्हो, तोहि जसुमति कब जायो?
गोरे नंद जसोदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर।
चुटकी दे दे हँसत ग्वाल, सब सीख देत बलबीर॥

ऐसे पदों में सात्विक वात्सल्य रस की पराकाष्ठा दीखती थी। इसी प्रकार रसखान का भी यह पद मेरे लिए कम प्रभावशाली नहीं था–

सेस गनेस महेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर ध्यावें।
जाहि अनादि अनन्त अखंड, अछेद अभेद सुवेद बतावें॥

नारद से सुकव्यास रटें, पचि हारें तऊ पुनि पार न पावें।
ताहि अहीर की छोहरियां, छछिया भर छाछ पे नाच नचावें॥

मेरे उपास्यदेव के बाल्यकाल की इन वात्सल्यरसभरी सजीव रचनाओं में कितनी स्वच्छ निर्मलता छलक रही है! परंतु युवावस्था के मेरे उसी आराध्यदेव के चरित्र पर इतना कुत्सित लांछन लगाया गया। तब उसे पढ़ कर मानस को जो गहरी चोट लगी थी, यह मैं ही जानता हूं। इसी प्रकार उसकी रासलीलाओं के वर्णन भी मेरे मन को गहरी चोट पहुँचाते थे। मेरे हृदय को सालते थे। मेरे उपास्य परमेश्वर का ऐसा अभद्र चित्रण मैं कैसे सहन कर पाता। मेरे लिए वह योगेश्वर कृष्ण था जिसने गीता का अनुपम उपदेश दिया था। तब मुझे लगता था कि यह सब उन रीतिकालीन शृंगाररसप्रेमी कवियों की काली करतूतें हैं जिन्होंने अपनी कामवृत्ति को मेरे उपास्यदेव के जीवन में ढाल कर अपनी वासना की भूख मिटाने की काल्पनिक कुचेष्टाएं की हैं। रीतिकालीन शृंगाररस के कवियों ने मेरे श्रीकृष्ण के ऐसे अभद्र चित्र प्रस्तुत किये जो मेरे लिए सर्वथा असह्य थे।

कभी मन में एक भाव यह भी उठता था कि स्वामी दयानंदजी के मतानुसार कहीं यह भी वाममार्गियों की काली करतूत तो नहीं है?

मेरे आराध्यदेव परम पिता परमात्मा श्रीकृष्ण के चरित्र को लांछित करने वाले अनेक घिनौने वर्णन देखे। वे जो मेरे सर्वस्व हैं, जिनके प्रति मैं नित्य यह पाठ करता हूं–

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

और यह भजन गाता हूं–

पितु मातु सहायक स्वामी सखा, तुमही इक नाथ हमारे हो।
आदि-आदि ...

बचपन से आराधित मेरे उन परम पूज्य का ऐसा चरित्रहीन चित्रण मुझे कैसे बर्दाश्त हो सकता था भला!

और फिर–

हिंदी के मेरे प्रथम गुरु पं. कल्याणदत्त दूबे ने हमें पाठशाला में नित्यप्रति सुबह-सुबह सामूहिक रूप से यह प्रार्थना करनी सिखायी थी।

हे प्रभू आनंददाता, ज्ञान हमको दीजिये।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को, दूर हमसे कीजिये॥
लीजिये हमको शरण में, हम सदाचारी बनें।
ब्रह्मचारी धर्मरक्षक, वीर व्रतधारी बनें॥

मैं बहुधा घर पर भी इस प्रार्थना का पाठ कर लिया करता था। बाल्यावस्था से ही मेरे मानस पर इसका बहुत गहरा प्रभाव था। युवावस्था में भी मुझे इसका बहुत सहारा मिलता रहा। बाल्य से किशोर और किशोर से युवावस्था तक मेरे मानस में यह शरणागत भाव प्रबल बना रहता था।

मैंने स्वयं कभी धूप-दीप जला कर या पत्र-पुष्प चढ़ा कर अपने ईश्वर की पूजा की हो, ऐसा स्मरण नहीं होता। किसी एकांत कमरे में अकेले बैठे, ऐसी प्रार्थना करते हुए ही मेरा नित्य का पूजन होता था।

लीजिए मुझको शरण में, मैं सदाचारी बनूं।
ब्रह्मचारी धर्मरक्षक, वीर व्रतधारी बनूं॥

कभी-कभी जब भावुक होकर यह गीत गाता –

शरण में आया हूं मैं तुम्हारी, दया करो हे दयालु भगवन।

तब प्रार्थना के बाद भी देर तक **"श्रीकृष्णः शरणं मम"** की भावभीनी भावना में हृदय निमग्न बना रहता।

मुझे यह प्रपत्ति मार्ग बहुत प्रिय लगता था। इससे जीवन में बहुत ढाढ़स बँधता था। मानो मेरे सिर पर मेरे ईश्वर का रक्षक हाथ है जो मुझे दुराचार से बचा लेगा, मेरे दुर्गुणों को दूर कर देगा।

युवावस्था में कदम रखते ही, जीवन के सारे क्षेत्रों में अप्रत्याशित लौकिक सफलताएं मिलीं, अतः मानस अहंभाव से भर गया। परिणामतः, अत्यंत क्रोधवृत्ति का गुलाम हो गया। उम्र के लिहाज से वासना भी जागती ही रहती थी। काम, क्रोध और अहंकार – इन तीनों में से जब कोई विकार प्रबल होकर जागता तब दूसरे दिन प्रातःकाल की प्रार्थना में आध घंटे तक आंसू बहाते हुए ऐसा कोई भजन दोहराता था –

तू दयालु दीन हौं, तू दानी हौं भिखारी।
मैं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज हारी॥

अथवा, अवरुद्ध कंठ से गिड़गिड़ाता था –

प्रभुजी मेरे अवगुण चित न धरौ।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो, मुझ पर कृपा करौ।

अथवा, व्याकुल हृदय से पश्चात्ताप करता था –

अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल!
काम क्रोध को पहन चोलनो, गल विषयन की माल॥

अथवा, अपने किसी मनोविकार को याद कर विह्वल हो उठता था –

मो सम कौन कुटिल खल कामी!
जो तन दियो ताहि बिसरायो, कैसो नमकहरामी।
पापी कौन बड़ो है मो ते, सब पतितन में नामी!

अथवा, कातर स्वर में अपने प्रभु से दया की भीख मांगता –

प्रभुजी! मैं तो थारो जी थारो।
चोखो बुरो कुटिल अर कामी, जो कुछ हूं सो थारो।
थारो हूं थारो ही रैस्यूं, कदे न होस्यूं न्यारो।
आंगळियां नूं परै न होवै, आ तो आप बिचारो!!
बुरो बुरो मैं बहुत बुरो हूं, आखिर टाबर थारो।
बिगड्यो हूं तो थारो बिगड्यो, थे ही मनै सुधारो॥

और मुझे सदा पूर्ण विश्वास रहता था कि मेरे प्रभु असीम करुणासागर हैं। मेरी दयनीय अवस्था देख कर मुझ पर अवश्य कृपा करेंगे। दीन सुदामा के प्रति जागी हुई उनकी करुणा मुझे जब-जब याद आती तब-तब मैं विह्वल हो कर गा उठता –

देख सुदामा की दीन दशा, करुणा करके करुणानिधि रोए।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं, नैनन के जल ते पग धोए॥

मैं अवरुद्ध कंठ से सुबकियां भरते हुए इसे बार-बार दोहराता –

करुणा करके करुणानिधि रोए।
नैनन के जल ते पग धोए॥

करुणा करके करुणानिधि रोए।
नैनन के जल ते पग धोए॥

और मेरी आंखों से बहती हुई अश्रुधारा मेरे कपोलों को धोती रहती। मेरा व्यथित हृदय पुकार उठता –

"मेरी बार क्यों देर करी प्रभु!"

मैं तो आप के सखा सुदामा की भांति धन-दौलत की आशा लेकर नहीं आया हूं। मैं आप से केवल विकार-विमुक्ति की भीख मांगने आया हूं। मुझे इस भीख से वंचित न करो प्रभो! बड़ी आशा लेकर आपकी शरण आया हूं प्रभो!

मेरे मन में अहंकार जागने ही न पावे, जागने ही न पावे प्रभो!

मेरे मन में क्रोध जागने ही न पावे, जागने ही न पावे प्रभो!

मेरे मन में वासना जागने ही न पावे, जागने ही न पावे प्रभो!

एक ओर भक्तिभावना से भरपूर होकर वासना से विमुक्त होने के लिए मेरे इष्टदेव श्रीकृष्ण से मेरी यह नित्यप्रति की द्रवीभूत याचना, दूसरी ओर रीतिकाल की ऐसी अभद्र रचनाएं, जिन्हें पढ़ते हुए मेरे हृदय की पीड़ा अथाह हो उठती थी। उसे कोई किन शब्दों में व्यक्त करे!

मेरे आराध्य प्रभुओं के प्रति कोई जरा-भी अशोभनीय भाव व्यक्त करे तो मुझे वह बहुत अखरता था। इसी प्रसंग में मेरी किशोर अवस्था की एक-दो घटनाएं याद आयीं, जिनसे मेरा हृदय मर्माहत हुआ था।

मेरी शिवभक्ति

जैसे श्रीकृष्ण की भक्ति मुझे अपनी मां से विरासत में मिली वैसे भगवान शिव की भक्ति अपने पिता से प्राप्त हुई। बचपन से ही दोनों मेरे आराध्यदेव रहे। घर में जो मंदिर था उसके सामने की दीवार पर रवि वर्मा के दो विशाल चित्र टँगे रहते थे। बाईं ओर श्रीकृष्ण का और दाहिनी ओर ध्यानावस्थित शिवजी का।

मैं किशोरावस्था से ही जैसे विष्णुसहस्रनाम अथवा गीता के एक अध्याय का, विशेषकर १२वें अध्याय, का नित्य पाठ करता था वैसे शिवमहिम्न स्तोत्र अथवा शिवतांडव स्तोत्र का लगभग नित्य पाठ करता था। दोनों के छंद मुझे बहुत प्रिय लगते थे, अतः पाठ करने में बहुत आनंद आता था। विशेषतः शिवतांडव स्तोत्र में शब्दानुप्रास की विपुल छटा पाठ को अधिक रोचक बना देती थी। जैसे कि –

डमड्डमड्डमड्डमन्निनाद वड्डमर्वयं।

अथवा,

धगद्धधगद्धगज्ज्वलल्लाट पट्ट पावके।

कुछ दिनों तक तो बिना अर्थ समझे इन पाठों का आनंद लेता रहा। फिर धीरे-धीरे प्रयास करते-करते उनके अर्थ पूरी तरह नहीं तो भी कुछ-कुछ समझ में आने लगे। तब स्तोत्र के पाठ की इस एक पंक्ति ने मेरे मानस को बहुत झकझोर दिया –

धराधरेन्द्रनंदिनी कुचाग्रचित्रपत्रक।

मुझे यह तो प्रिय लगता कि कोई मेरी माता पार्वती की गोद में बैठ कर उसके स्तनपान द्वारा अमृत का रसास्वादन करने की कल्पना करे। परंतु मेरे लिए यह नितांत असह्य था कि कोई उसके नग्न स्तनों के 'कुचाग्रचित्रपत्रक' होने की कामोत्तेजक कल्पना करे। वह रावण कैसा भक्त कवि था जिसने मां की वात्सल्यमयी कल्पना न करके, कामोत्तेजक कल्पना की? मन में यह चिंतन आते ही उस सरस पाठ का सारा आनंद नीरस हो गया। माता पार्वती के नग्न कुचों का ऐसा कामुक चित्रण मेरे हृदय में शूल की भांति चुभने लगा।

एक अन्य घटना

उन दिनों ऐसी ही एक अप्रिय घटना और घटी। पिताजी शिवजी के अनन्य भक्त थे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक पुजारी उनसे शिवजी की विधिवत षोडशोपचार पूजा करवाया करता था। ढेर सारे बिल्वपत्र, पुष्प, अक्षत, चंदन, जल और दूध आदि चढ़ा कर यह पूजा संपन्न होती थी। जिस चांदी की थाली में गोलीनुमा प्रतिमा रख कर पूजा की जाती थी वह इन सामग्रियों से भर जाती थी। जब पूजा और पाठ आदि का कार्यक्रम पूरा हो जाता तब घर का नौकर थाली की सामग्री बटोर कर समीप के एक पीपल पर चढ़ा आता। एक दिन पूजा का समय आया तो सबने देखा कि शिवजी की प्रतीकात्मक प्रतिमा गायब है। यह प्रतिमा एक चांदी की जलेरी पर स्थापित रहती थी जिस पर छत्रछाया करता हुआ एक चांदी का ही सर्प बैठाया गया था। चुराने वाला ये चांदी के अलंकरण चुराता, उस प्रतीकात्मक गोल पत्थर को क्यों चुराता?

भक्तिमार्ग के मेरे बचपन के गुरु श्री मदनमोहन शर्माजी वहीं खड़े थे। उन्होंने कहा देखो, कहीं नौकर पूजा की सामग्री के साथ पत्थर की उस गोली को तो पीपल पर नहीं चढ़ा आया। सचमुच यही हुआ। शिवजी की वह गोलीनुमा प्रतिमा घर वापस लायी गयी। मेरे गुरु शर्माजी अत्यंत विनोदी स्वभाव के थे। उन्होंने ऐसे ही एक पूर्व-प्रसंग की रोचक कहानी कह सुनायी। उन्होंने बताया कि ऐसी एक घटना पहले भी घटी तो बेचारे नौकर को जब वह प्रतीक प्रतिमा कहीं नहीं मिली तब वह बहुत घबराया। समीप पड़ी फल की टोकरी में से एक बड़ा-सा पका हुआ जामुन उठा कर उस गोली के स्थान पर स्थापित कर दिया। जब पूजा आरंभ हुई तब नहलाने-धुलाने के लिए पुजारीजी ने उसे हाथ में लिया। जरा-सा मसला तो पका हुआ फल था फूट गया। पुजारीजी के तेवर चढ़े। नौकर हाजिरजवाब था। उसने बड़े सहजभाव से कहा –

पुनिपुनि चंदन, पुनिपुनि पानी।
ठाकुर गलिगै, हम का जानी।

इस रोचक कहानी ने सब को खूब हँसाया। गनीमत थी कि हमारे ठाकुर तो नहीं गले!

समीप के आर्यसमाज में मेरे आर्यसमाजी गुरु पं. मंगलदेवजी शास्त्री रहते थे। उन्हें नमस्कार करने गया तो यह रोचक कथा उन्हें कह सुनायी। वे भी खूब हँसे। परंतु फिर गंभीर होकर बोले – "जानते हो, तुम जिसकी पूजा करते हो उस शिवजी का वह प्रतीक क्या है? और जानते हो वह किस पर स्थापित है?" मैंने कहा चांदी की जलेरी पर। उन्होंने कहा, उस जलेरी पर लगे चांदी के सांप को उठा कर देखो तो जलेरी का सही रूप सामने आ जायगा। यह सब वाममार्गियों की काली करतूतें हैं, जिन्होंने हमारे कामजयी शिव को बदनाम करने के लिए ऐसे अश्लील प्रतीक स्थापित किये जो कि नासमझी से घर-घर में पूजे जाने लगे।

शास्त्री जी की यह बात सुन कर मैं सन्न रह गया। जैसे मुझे सांप सूंघ गया। क्षण भर पहले का विनोद गहरे विषाद में बदल गया। घर आकर ध्यान से देखा, जलेरी पर रखे सांप को अलग किया तो शास्त्रीजी का कथन

सही दीख पाया। जैसे मेरे पांवतले की धरती खिसक गयी। मेरे सामने यह सच्चाई पहले कभी उजागर नहीं हुई थी। पर अब क्या करता? यही निश्चय किया कि यह जो दीवार पर लगे चित्र में ध्यानावस्थित भगवान शिव हैं, वही मेरे आराध्यदेव हैं जो काम को भस्म करने वाले परम तपस्वी हैं। वाममार्गियों द्वारा मेरे आराध्य देव की की गयी यह कुत्सा मुझे सहन नहीं होती। इस भद्दे और अश्लील मजाक ने किशोर अवस्था में मेरे हृदय को बहुत आहत किया।

एक और घटना

किसी भी पूज्य व्यक्ति की अवमानना किये जाने से मैं मर्माहत हो जाया करता था। इससे संबंधित एक और घटना।

तब मैं मांडले में खालसा स्कूल की दसवीं कक्षा में पढ़ता था। मैंने मैट्रिक की परीक्षा के लिए हिंदी का विषय चुना था। परंतु हमारे स्कूल में हिंदी का कोई अध्यापक नहीं था। स्कूल में मास्टर प्यारेलालजी की नयी-नयी नियुक्ति हुई थी। वे आर्यसमाजी थे, अतः साधारण हिंदी तो जानते थे। परंतु ब्रज और अवधी भाषाओं में उनकी गति नहीं थी। इस क्षेत्र में वे बहुधा कठिनाई महसूस करने लगते थे। वैसे सगुण-साकारवादी सूर और तुलसी उनके प्रिय कवि भी नहीं थे। कक्षा में मैं अकेला हिंदी का विद्यार्थी था। अतः हिंदी के पीरियड में वे अपनी कुर्सी खींच कर मेरी डेस्क के सामने बैठ जाते थे। उस दिन किसी कारण से बहुत थके हुए आये। सदा की भांति मेरे सामने बैठे। पाठ्यपुस्तक थी – 'हिंदी पद्य पारिजात'। उसमें आज सूर के पदों पर चर्चा करनी थी। वे बैठते ही बोले, आओ देखें सूअरदासजी क्या कहते हैं?

सूअरदासजी?

यह सुनते ही मुझे लगा जैसे किसी ने मेरे कलेजे में खंजर भोंक दिया हो। मुझे भक्तिरस में डुबोये रखने वाले मेरे आदरणीय संत को किसी ने ऐसे अपशब्द कहे, सुन कर मैं सन्न रह गया। मेरी आंखें डबडबा आयीं। सामने मेरे हिंदी के अध्यापक बैठे थे, जिन्हें मैं कुछ बोल भी नहीं सकता था। वे भी मेरे पूज्य थे। उन्होंने मेरी व्यथित मनोदशा तुरंत भांप ली और जरा घबराए।

मुझे स्वस्थ करने के लिए कह दिया, "जिह्वा-स्खलन हुआ"। हो सकता है ऐसा ही हुआ हो। परंतु मेरे मानस को पूर्ववत स्वस्थ करने में उन्हें दो-चार दिन लगे। यह अपने आप में जीवन की एक अलग अविस्मरणीय घटना है जिसका विस्तृत विवरण मेरे सभी गुरुजनों के उपकारों का वर्णन करते हुए किसी अन्य आत्मकथन में कर पाऊंगा। अब तो केवल इतना ही कि किसी भी पूज्यजन का अपमान सुन कर अत्यंत व्यथित हो जाना मेरा सदा का स्वभाव रहा है।

एक और घटना

बचपन में मुझे जिस एक ग्रंथ ने सबसे अधिक प्रभावित किया, वह था तुलसी का रामचरित मानस। मेरे हिंदी के आदि गुरु कल्याणदत्त दूबेजी तुलसी के परम भक्त थे और हमें समय-समय पर तुलसी रामायण के किसी न किसी अंश का सस्वर सामूहिक पाठ कराते थे। चौक चांदनी के त्यौहार पर हम सभी बालकों को नगरफेरी करवाते थे जो कि वस्तुतः मांडले की २७वीं गली और ८३वीं गली के मारवाड़ी मोहल्ले तक सीमित रहती थी। तब हम किसी विद्यार्थी के माता-पिता के घर के सामने खड़े होकर ऐसी कोई चौपाइयां गाते थे –

एक बार त्रेता युग माहीं। शंभु गये कुंभज ऋषि पाही॥
संग सती जग जननि भवानी। पूजेहु ऋषि अखिलेश्वर जानी॥

.... आदि-आदि।

घर की मालकिन ड्योढ़ी पर हमारा इंतजार करती हुई खड़ी रहती। उनमें से कोई मास्टरजी को नमस्कार कर, उन्हें धोती, गमछा, मिठाई तथा कुछ नगदी दक्षिणा भेंट चढ़ाती थी। कोई-कोई केवल दक्षिणा ही भेंट देती थी। मास्टरजी का मासिक वेतन बहुत कम था। वर्ष में एक बार यही उनकी मुख्य आमदनी थी। हमें इस फेरी में और इसके पहले पाठशाला में इसकी तैयारी में गायी गयी ये चौपाइयां बहुत प्रिय लगती थीं।

मुझे रामचरितमानस इतना प्रिय लगता था कि किशोर अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते मैं उसे पूरा पढ़ गया था। इसमें मुझे अद्भुत भ्रातृ-प्रेम और पितृ-आज्ञापालन के आदर्श प्रसंग बहुत प्रिय लगते थे। मेरे बाल-मानस में

अपने पिता और बड़े भाइयों के प्रति जो आदर और प्यार के बीज बोये गये वे आगे जाकर शीघ्र ही अंकुरित हुए और विकसित हुए। जब-जब मेरे अग्रज भाई बालकृष्ण से संबंधित कोई प्रसंग उत्पन्न होता तब मैं अपने आप को भरत की भूमिका में स्थित हुआ पाता। इसी प्रकार भाई बाबूलाल के संबंध में अपने आप को लक्ष्मण की भूमिका में देखता। बहुधा मेरी प्रातःकालीन एकांत प्रार्थना में लक्ष्मण की भूमिका को याद कर विह्वल हृदय से उस प्रसंग की चौपाइयां गाया करता जब कि माता सुमित्रा ने लक्ष्मण को राम के साथ जाने की अनुज्ञा दी थी।

तात तुम्हार मात वैदेही। पिता राम सब भांति सनेही॥
तुम्हरेहि भाग राम वन जाही। दूसर हेतु तात कछु नाही॥

मैं इन्हें अत्यंत भावविभोर होकर गाता।

युवावस्था में जीवनक्षेत्र में सफलता-ही-सफलता मिलती गयी। अतः न चाहते हुए भी बहुधा अहंभाव जाग उठता था। तब भरत के प्रति राम के ये बोल मुझे विह्वल करते और इस दोहे को कातर कंठ से बार-बार दोहरा कर मेरा मन स्वस्थ होता।

भरत न होइहिं राजमद, विधि हरिहर पद पाहिं।
कबहुँ कि कांजी सिकरनि, खीर सिंधु बिकसाहिं॥

मेरे मानस में मेरे अग्रज के प्रति राम का-सा पूज्य भाव और उसी की अवमानना की एक ऐसी अप्रिय घटना घटी जिसने कि मुझे बुरी तरह तड़पा दिया। किसी ने मुझसे कहा, **बालो पेट को काळो** । मेरे किशोर हृदय में जैसे बरछी के घाव लगे। परंतु क्या करता? बोलने वाला भी मेरा पूज्य था। मेरे हृदय की पीड़ा मेरे चेहरे पर प्रकट हुई देख कर वह भी सहम गया और बात पलट कर मेरे घाव पर मरहम लगाने का प्रयत्न करने लगा। परंतु घाव की पीड़ा कई दिनों तक असह्य बनी रही, हृदय को सालती रही।

मेरे अग्रज के प्रति अनादर भाव के मिथ्या वचनों ने ही मुझे इतना पीड़ित किया। यदि कोई मेरे आराध्यदेव को अपमानित करे तब तो मेरी व्यथा असीम हो उठनी स्वाभाविक थी।

सचमुच तब मेरी व्यथा असीम ही हुई जबकि मैंने पहली बार रसखान के उस सवैये की अंतिम पंक्ति पढ़ी। लेकिन आगे चल कर जब देखा कि हिंदी के सभी रीतिकालीन कवि इसी दलदल में धँसे हुए हैं, तब उस अकेले को क्या दोष देता? सारा आवां का आवां बिगड़ा हुआ था। सभी कुओं में भांग पड़ गयी थी। सचमुच यह देश का बड़ा दुर्भाग्य था। हमने अपने आपको, अपनी भक्ति की पावन परंपरा को किस प्रकार गर्हित कर लिया, लज्जित कर लिया।

रीतिकालीन हिंदी कवि

मुझे यों लगा कि ऐसे चरित्रहीन कामुकताभरे रीतिकालीन काव्यों के कारण भी देश में सच्चरित्रता के साथ-साथ शूरता और वीरता का ह्रास हुआ। अतः उन दिनों देश की दुर्बलता का एकमात्र कारण बुद्ध की शिक्षा को ही न मान कर, मैं इन रीतिकालीन कामुकतालीन कवियों को भी मानने लगा।

हिंदी के उस कालिमापूर्ण साहित्य का अध्ययन करते हुए मैंने देखा कि उन दिनों देश के राजदरबारों में ऐसे शृंगारी कवियों का मान-सम्मान सहित संरक्षण होने लगा जिन्होंने प्रचुर मात्रा में धर्मविरोधी साहित्य का उन्मुक्त सृजन और प्रसारण किया। इस प्रवृत्ति ने राजवंशियों और सामंतों को निम्न कोटि के कामभोगी कामकीट बना दिया। मुगल सम्राट अकबर के शाही दरबार में रीतिकालीन शृंगाररस के अनेक कवि थे। इसी के परिणामस्वरूप विलास-वैभव का जो दूषित वातावरण बना उसके चलते मीनाबाजार का उद्भव हुआ। अकबर के बाद जहांगीर और शाहजहां भी इसी कामकर्दम के कीट बने रहे। इसका गर्हित प्रभाव देशी राजाओं पर भी पड़ना स्वाभाविक था। देश के शासकों और शासनाधिकारियों के चरित्र का इतना घोर पतन हुआ कि इसका वृत्तांत पढ़-सुन कर किसी भी नैतिकताप्रिय देशप्रेमी का सिर लज्जा से झुक जाय।

तत्कालीन विषयासक्त शासकों के राजमहल सदा विलास-वैभव से दीप्त रहते थे। सुरा और सुंदरियों का अबाध सेवन चलता रहता था। राजसी विलासमय वातावरण को अधिक उन्मादक बनाने के लिए इन व्यवसायी कवियों द्वारा कामातुरी नायिकाओं के सजीव शब्दचित्र सृजित किये जाने लगे। पुरातन भारतीय साहित्य में जिसकी वंदनीय गरिमा अभिव्यक्त हुई, उसी नारी को अब केवल पुरुष के कामभोग की सामग्री के रूप में चित्रित किया जाने लगा। शब्दचित्रों के इन कुशल चितेरे कवियों की कला उद्दाम कामवासना की अग्नि को और अधिक प्रज्वलित करने का दुष्कर्म करने लगी। काव्यकला का प्रयोजन भोगपरक जीवन की वासना को उद्दीप्त करने

तक सीमित रह गया। नरेशों और सामंतों की छत्रछाया में हिंदी की भ्रष्ट कविता का यह दरबारी रूप पनपने लगा। साहित्यसृजन की शिष्ट मर्यादित नैतिकता विलुप्त होने लगी। सत्साहित्य की पवित्रता शृंगारप्रधान युगधर्म की दूषित कालिमा से कलंकित हो उठी।

यह कालिमा और अधिक घनीभूत हो उठी जबकि कामवासना के इन व्यवसायी कवियों ने अपनी वासनाप्रधान रचनाओं पर भक्ति के नाम पर एक धोखे का आवरण चढ़ाना आरंभ कर दिया। कामदेव के इन कामांध अनुचरों ने सारे देश में पार्थिव कामाचार का एक ऐसा कुहरा छा दिया जिससे भ्रांत हुए लोग नितांत धर्मविरोधी रचनाओं में दोष देखने के स्थान पर उसमें रस लेने लगे और इस निपट स्पष्ट कामलीला को ईशलीला कह कर गले लगाने लगे।

योगेश्वर कृष्ण को भोगेश्वर कृष्ण बना कर उनके इस विकृत रूप को पूज्य बनाया जाने लगा। यह सब इन धनलोलुप कवियों के द्वारा इसलिए किया गया जिससे कि इनके कामलोलुप आश्रयदाताओं को कामभोग के क्षेत्र में बुरे-से-बुरा अधार्मिक दुष्कर्म करने में भी कोई हिचक न रह जाय। एक से अधिक नारियों के संग किये गये रतिरंग को पुरुष का जन्मसिद्ध अधिकार माना जाने लगा।

मैं यह भलीभांति समझता था कि ये शृंगारी कवि विधर्मी नहीं थे। हमारे आराध्यों को कलंकित कर हमारे धर्म को नष्ट करने का रंचमात्र भी उनका उद्देश्य नहीं था। मैंने उनमें से किसी-किसी के भक्तिरस के इक्के-दुक्के सराहनीय पद भी देखे थे। स्पष्ट है कि उनका एकमात्र लक्ष्य राजदरबार में मान-सम्मान के साथ धनार्जन करना था। परंतु उनकी इस मानतृष्णा और धनतृष्णा ने समाज और देश का कितना अहित किया!

राज्यमद और सत्तामद स्वतः काममद जगाते थे और ये पेशेवर शृंगारी कवि इस मद को प्रबल बनाते थे। परिणामस्वरूप, अकबर के महल में मीना बाजार लगना बंद हो जाने पर भी उसके बाद जहांगीर और शाहजहां के महलों में इन दूषित रूप बाजारों का सिलसिला फिर से चल पड़ा। जहांगीर तो शाही विलास के लिए कुख्यात था ही, शाहजहां उससे भी आगे बढ़ गया। उसकी विलासलोलुपता संयम की सारी सीमाएं लांघ गयी। शाही दरबार में विलास-व्यवसायी कवियों और कलाकारों का खूब मान-सम्मान बढ़ने लगा।

परंतु इसकी घोर प्रतिक्रियास्वरूप उसके उत्तराधिकारी औरंगजेब ने इस्लामी कट्टरता के नाम पर इन सब पर कठोर प्रतिबंध लगा दिये। वाद्ययंत्रों और वाद्यकों को, नृत्यों और नृत्यांगनाओं को, मदिरा और मधुबालाओं को, संगीतगायकों, कवियों और काव्यगोष्ठियों को, चित्रों और चित्रकारों को, स्वच्छ और अस्वच्छ सभी प्रकार की कलाओं को, शाही हरम से और दरबार से पूर्णतया निष्कासित कर दिया। इतना ही नहीं, समस्त मुगलिया सल्तनत में वेश्यावृत्ति और मदिरापान के मुमानियत की मुनादी फिरा दी। अच्छा ही किया। लेकिन इस कदर बिगड़ी हुई राज्य-व्यवस्था में सुधार लाना सरल नहीं था।

इस कठोर राजकीय कानून का शाही महलों में अक्षरशः पालन अवश्य हुआ। परंतु दिल्ली और आगरा जैसी राजधानियों में ही प्रत्यक्ष नहीं तो परोक्ष रूप से यह सरकारी कानून तोड़ा जाता रहा। बाकी सारे साम्राज्य को इस कानून से रंचमात्र भी बांधा नहीं जा सका। अन्य सभी राजनगरों के नवाबों और सुलतानों के, वजीरों और दरबारियों के, मुसाहिबों और मनसबदारों के तथा सामंतों और सरदारों के, महलों और राजभवनों में, हरमों और रनिवासों में जो भोगविलास की, रागरंग की, नृत्यगान की, सुरा और सुंदरियों की महफिलें जमती थीं उनमें कोई अंतर नहीं आया।

जबरन लगायी गयी यह रोकथाम औरंगजेब के बाद एक दबी हुई ज्वालामुखी-सी फूट पड़ी। जिन-जिन बुराइयों पर कड़ा प्रतिबंध लगाया गया था, वे सभी अब उन्मुक्त हो बाहर-भीतर सर्वत्र उच्छृंखलता का नंगा नाच नाचने लगीं। इसका सबसे बुरा प्रभाव मुगलिया सल्तनत के केंद्र पर ही पड़ा। औरंगजेब के बाद एक से बढ़ कर एक ऐयाश और मद्यप उत्तराधिकारी शाही तख्त पर बैठते गये। उन्हें शासकीय जिम्मेदारियों में कोई रुचि नहीं थी। मौज-मजे करना ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। ऐश और आराम, भोग और विलास, सुरा और सुंदरियां, नाच और गान, तबले और सारंगियां, घुंघरू और थापों की महफिलें रात-दिन सजी रहने लगीं। नशे में सतत धुत्त बादशाह रहने लगे और उनसे बढ़ कर शाही दरबार के साहिब-मुसाहिब। ऐसी हालत में राजकाज की जिम्मेदारी कौन संभालता? शासन की सारी व्यवस्था अस्तव्यस्त हो चली। दरबारियों में से

जो चालाक थे वे अवसर का लाभ उठा कर अपना घर भरने लगे। भारत में दूर-दूर तक फैली हुई मुगलिया सल्तनत विशृंखलित होने लगी। शासकीय सत्ता छिन्न-भिन्न होने लगी। पतनोन्मुख बादशाहत की दशा अत्यंत दयनीय हो गयी। शाही महल विलास की दुर्दमनीय विभीषिका के शिकार हो गये।

मुगलवंश के दुर्बल उत्तराधिकारी जहांदारशाह (ई. सन १७१२) के समय यह विवेकहीनता पराकाष्ठा पर जा पहुँची। उसकी मुँहलगी रखैल लालकुँवर के इशारों पर राजकार्य चलने लगा। साम्राज्य के ऊंचे-ऊंचे पदों पर उसके रिश्तेदारों की नियुक्ति होने लगी। महलों में उसके चाटुकार तबलचियों और सारंगीवादकों के हुक्म चलने लगे। जाहिरा कुंजड़िन जैसी लालकुँवर की साथिनों को बड़ी-बड़ी जागीरें दे दी गयीं।

तवायफों और रखैलों के इशारों पर नाचने वाले शक्तिशून्य बादशाह की दशा अत्यंत दयनीय और हास्यास्पद हो गयी। मुगलवंश की जो थोड़ी-बहुत मान और मर्यादा, शान और इज्जत बची थी वह भी धीरे-धीरे मिट्टी में मिल गयी। लालकुँवर के अत्यंत निम्नकोटि के पुराने प्रेमी मद्यपान के लिए महल में आते और देर तक महफिल जमाते। बादशाह भी उसमें शामिल होता। कभी-कभी ये लोग मदमत्त होकर बादशाह को ठोकरों और थप्पड़ों से पीट कर बेहाल कर देते। लालकुँवर को प्रसन्न रखने के लिए बादशाह यह सब कुछ सहता।

दिल्ली दरबार की ऐसी दयनीय स्थिति का दर्दनाक ब्योरा पढ़ कर हम अंदाज लगा सकते हैं कि केंद्रीय राजसत्ता की कैसी दुर्दशा हो चुकी थी। विशाल मुगलिया सल्तनत बिखरने लगी। केंद्रीय हुकूमत को हथियाने के लिए देश की कोई अन्य शक्तिशाली सत्ता सामने नहीं आयी। कोई नवीन शक्ति प्रकट नहीं हुई।

महाराणा प्रताप द्वारा प्रज्वलित की गयी स्वदेश-प्रेम की अग्नि की अब कोई चिनगारी भी शेष नहीं रह गयी। दुश्मनों के दिल दहला देने वाली शेर शिवाजी के दुर्धर्ष दहाड़ की अब दुर्बल गूंजमात्र रह गयी। दशमेश गुरु गोविंदसिंहजी की सिंहगर्जना भी अब मंद पड़ गयी और एक संकुचित प्रदेश तक सीमित रह गयी। सारे देश में न फैल पायी। सारे देश की चिंता थी भी किसे? छोटे-बड़े सभी रजवाड़े अपनी-अपनी खोल में सिमट कर रह गये।

उनके यहां विलास-वैभव और कामभोग का नंगा नाच और अधिक निरंकुश हो उठा। शौर्य और वीर्य के धनी राजपूतों के राजघरानों का घोर अधःपतन हुआ। जयपुरनरेश राजमहलों की नर्तकियों के साथ पांव में घुंघरू बांध कर नाचने लगे। विलास और विलासजन्य कायरता की मात्रा औचित्य का अतिक्रमण कर गयी। आत्मसम्मान और देशभक्ति की प्राचीन कुल-मर्यादा पूर्णतया विलुप्त हो गयी। कर्नल टॉड ने राजपूताने के इतिहास में लिखा है कि उस समय के राजपूत अफीम के नशे में, टप्पे की धुन पर मदमस्त होकर स्वर्गीय आनंद का अनुभव करते थे। वस्तुतः राजपूतों की सुदृढ़ स्नायुओं में मुगल दरबार की सुकोमल नजाकत और नकली नफासत समा गयी थी। राजपूती रक्त की उष्णता सर्वथा शीतल और शिथिल हो चुकी थी।

जैसा राजा वैसी प्रजा। देश के अमीरों और रईसों के घरों में भी ऐसी ही महफिलें जमने लगीं। पारिवारिक व सामाजिक महोत्सवों पर वारांगणाओं का नृत्य कराया जाना प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया। ईश्वर की परिणीता कहलाने वाली देवदासियों के नाम पर नृत्यांगनाओं का रूप-सौंदर्य और उनके घुंघरुओं की झनकार अनेक मंदिरों में पुजारियों के मनोरंजन और कामभोग के साधन बन गये। कुछ एक महंतों के मठ रजवाड़ों और सामंतों के विलास-वैभव की असंयत उच्छृंखलता से टक्कर लेने लगे। देश के पुरातन नैतिकतापूर्ण आर्य धर्म की हानि और ग्लानि होती गयी। उस पर कुत्सित अनार्य धर्म हावी होता गया।

मुझे यह देख कर दुःखद आश्चर्य होता था कि ईश्वर-भक्ति प्रेमी-प्रेमिका के रूप में ही क्यों प्रचलित की गयी? भक्ति मार्ग के प्रचार में पिता और संतान का संबंध कितना उचित और नीतिपरक होता। स्वामी और सेवक का संबंध भी कितना सार्थक और समुचित होता? पत्नी और पति के रूप में ही भक्ति का प्रचार होता तब भी बुरा नहीं होता। परंतु प्रेमी और प्रेमिका के, आशिक और माशूका के अवैध संबंधों पर भक्ति का प्रचार क्यों किया गया? कुछ समझ में नहीं आया।

मैंने कभी इसकी कोशिश भी नहीं की और करता तो सफल भी नहीं होता कि इस इश्के-मिजाजी को इश्के-हकीकी में बदल कर देखूं। इस प्रत्यक्ष पार्थिव स्थूल लौकिक प्रेम को एक कल्पनाजन्य सूक्ष्म दिव्य प्रेम में बदल कर

देखूं। मैं नहीं जानता कि अन्य लोग इसमें सफल हुए तो कैसे हुए? हो सकता है कि उनके मुकाबले मेरा दृष्टिकोण अधिक सांसारिक रहा हो। मैं अपने आपको धोखा नहीं दे सका। लेकिन भगवान कृष्ण के प्रति मेरी आस्था में रंचमात्र भी कमी नहीं आयी। गीता का महान उपदेशक कृष्ण मेरा आराध्य बना रहा।

मैं इस दूषित कामभोग को ईश्वरीय लीला भी नहीं स्वीकार कर सका। यदि ईश्वर को अपनी लीला ही प्रकट करनी थी तो इस धर्मविरोधी अनैतिक स्वैराचार के रूप में क्यों की? स्वयं ईश्वर ने लोगों को ऐसा गलत संदेश क्यों दिया? अतः स्पष्ट था कि जो हुआ वह कुछ बिगड़ैल मानस के कवियों की कल्पना की उपज थी। उन्हीं की रचना थी जिसके कारण राजाओं का पतन हुआ, महंतों और मठाधीशों का पतन हुआ, मंदिर के पुजारियों का पतन हुआ और उनके साथ-साथ दुराचरण की यह धारा जनसाधारण को भी ले डूबी। दुराचरण पर धर्म का मुलम्मा चढ़ाये जाने से सारे देश का पतन हुआ। स्वार्थांध राज्याश्रित कवियों की वाणी भोगविलास की मदिरा पीकर बेसुध हो गयी। उनकी वाणी में यदि स्वदेश-प्रेम का स्वर गूंजता, विदेशियों की कूटनीति को अनावरित करते हुए उनके चंगुल में न फँसने की चेतावनी मुखरित होती तो राष्ट्रीय जागरण की चेतना, इस विशृंखलित हुए देश को एकता के दृढ़ सूत्रों में बांध देती और तब चालाक विदेशी साम्राज्यवादी शक्ति अपना मनसूबा पूरा न कर पाती। परिणामस्वरूप देश का इतिहास ही बदल जाता।

उस युग के इस दूषित साहित्य का अध्ययन करते-करते मुझे यह स्पष्ट समझ में आने लगा कि यह भी एक प्रमुख कारण था जिससे कि सारा देश बिखर गया, दुर्बल और पराधीन हो गया। जो देश के शासक थे, रक्षक थे वे ही राग-रंग में डूबते चले गये। तब देश की रक्षा कौन करता? पश्चिम के गोरे व्यापारियों की एक साधारण-सी कंपनी इस कमजोर हुए देश के एक-एक भाग को कुचलती गयी और अंततः दिल्ली की मुगल सल्तनत को भी निगल गयी। तत्पश्चात जो भी नवाब और राजा बचे उन्होंने गोरों की गुलामी में ही अपने आपको सुरक्षित समझा और एक-एक करके सब ने इस विदेशी सत्ता की हुकूमत स्वीकार कर ली। नेहरूजी ने ठीक ही कहा कि उस समय यदि देश एकजुट हो जाता तो हम अपनी आजादी नहीं गँवाते। देश की कमजोरी और गुलामी का यह एक महत्त्वपूर्ण कारण अब मेरे लिए पूर्णतया स्पष्ट था।

जातिपांतिजनित दोष

उन्हीं दिनों देश के गुलाम होने का, और विशेषकर मुस्लिम आक्रमणों से गुलाम होने का, एक और कारण सामने आया। कुछ सदियों से देश में सवर्ण-अवर्ण, जात-पांत, अछूत-सछूत पर आधारित ऊंच-नीच के विभाजन की जकड़न इतनी दृढ़ हो गयी थी कि इस कारण विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करने के लिए समाज के सारे लोग एकजुट न हो सके।

दूसरे, इस चूड़ीउतार व्यवस्था में नीचे के तबके के लोगों को विदेशी आक्रमणकारियों ने यह कह कर अपनी ओर आकर्षित कर लिया कि तुम इस प्रकार दलित अवस्था में क्यों रहते हो? हमारे यहां ऊंच-नीच का कोई भेदभाव नहीं है। सब एक दस्तरख्वान पर एक-साथ खाना खाते हैं। तुम भी हमारे साथ बैठ कर खाना खा सकते हो। इससे अवर्ण जातियों के समूह के समूह ऊंच-नीच का भेदभाव रखने वाले अपने समाज को त्याग कर उनसे जा मिले और परिणामस्वरूप आक्रामकों की शक्ति बढ़ी और देश कमजोर होता चला गया। यह कथन तर्कसंगत लगा। क्योंकि युद्धकाल में भारत में रहते हुए मैंने स्वयं देखा कि राजस्थान में ही नहीं, देश में अन्यत्र भी जिन्हें छोटी जाति वाले कहते हैं, जैसे – रंगरेजों, छीपों, मनिहारों, राजगीरों, जुलाहों, तेलियों आदि की पूरी-की-पूरी स्थानीय आबादी अपने पुरखों का धर्म छोड़ कर मुस्लिम हो गयी। इससे भी देश अवश्य दुर्बल हुआ होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। जातिपांतिजनित दोषों का कटु अनुभव मुझे युद्धपूर्व बरमा में हो चुका था।

आर्यसमाज के प्रभाव में मैं किशोर अवस्था से ही छुआछूत और जातिपांति की प्रथा को बुरा मानता रहा हूं। जातिपांति की जकड़ और छुआछूत की पकड़ समाज के लिए कितनी घातक है, यह युवावस्था में और अधिक स्पष्ट होती गयी। इस प्रसंग में मेरी किशोर अवस्था के कुछ एक संस्मरण मानस पटल पर अनायास उभर आये।

शुद्धिकरण

तब मेरी उम्र लगभग सोलह वर्ष की थी। अत्यंत कट्टर सनातनी घर में जन्मने और पलने पर भी पिछले लगभग चार वर्षों से आर्यसमाज के संपर्क में आया। स्वामी दयानंदजी सरस्वती की बुद्धिपरक विचारधारा ने मेरे मन-मानस को बहुत झकझोर दिया। यद्यपि सगुण साकार की भक्ति रसधारा में गहराई से निमग्न रहने के कारण उनके द्वारा उपदेशित निर्गुण निराकार की ओर उन्मुख नहीं हो सका, तथापि अंधविश्वास से छुटकारा पाने की तथा समाज-सुधार आदि की उनकी कल्याणी शिक्षा ने मुझे बहुत प्रभावित किया।

समाज में प्रचलित बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, दहेज-प्रथा आदि को दूर करने के स्वप्न जागने लगे। विधवा-विवाह के समर्थन में भी अग्रसर हुआ, यद्यपि सफलता नहीं मिली। इसी प्रकार अपने समाज से निकल कर अन्य संप्रदायों में दीक्षित हुए व्यक्ति यदि स्वेच्छा से पुनः लौटना चाहें तो उनके शुद्धिकरण के लिए भी उत्साहित हुआ।

इस संबंध में संयोगवश एक प्रसंग आ जुटा। मांडले (बरमा) में हमारे घर से कुछ दूर एक मस्जिद थी जिसके इर्द-गिर्द बहुत बड़ा खुला मैदान था। उसके किनारे-किनारे गरीब भारतीय मुसलमानों के घर थे। उसी में एक तबेला था, जिसमें घोड़े बँधे रहते थे। उनके पास ही घोड़ागाड़ियों की कतार लगी रहती थी। इस मोहल्ले के भारतीय मुसलमान कोचवान का काम करते थे और सुबह से शाम तक भाड़े पर घोड़ागाड़ी चलाते थे। जो आमदनी होती उससे गाड़ी और घोड़े के मालिक को उनका भाड़ा चुका कर अपना गुजारा करते, घोड़े का भरण-पोषण करते, गाड़ी की देखभाल, मरम्मत इत्यादि भी करते। तदनंतर जो बचता उसे अपने बच्चों के लिए भारत में अपने गांव भेज देते।

उनमें का एक कोचवान था – अहमद। वह मुझसे दो-तीन वर्ष ही बड़ा होगा। बहुत हँसमुख और मिलनसार था। वह अपनी गाड़ी को नयी-नवेली वधू की तरह खूब सजा-धजा कर रखता। उसे रंग-रोगन से चमकाये रखता। बैठने की गद्दी मैली नहीं होने देता। अपने घोड़े को खूब अच्छा

खाना खिलाता। रोज उसे नहलाता, सहलाता, थपथपाता। घोड़ा भी इतना दीक्षित कि उसके इशारेमात्र को हुक्म मान कर चलता। किसी ने उसे अपने घोड़े को चाबुक मारते नहीं देखा। चाबुक ऊंचा उठा कर मुँह से अलग-अलग आवाजें निकालता और उसी से उसका काम बन जाता। ग्राहकों से इतना मिलनसार कि भाड़े को लेकर कभी किसी से हुज्जत नहीं करता। हमारे परिवार के ही नहीं, अन्य अनेक लोग भी उससे खुश रहते। उसकी गाड़ी खाली होती तो उसी का प्रयोग करते। कभी-कभी बहुत जल्दी न हो तो उसकी गाड़ी के लिए प्रतीक्षा भी करते। इससे अन्य कोचवानों के मुकाबले उसकी आमदनी ड्योढ़ी-दुगुनी होती। इससे वह स्वयं अच्छा खाता, अच्छा पहनता और अपने घोड़े और गाड़ी पर आवश्यकता से अधिक खर्च करता। उसे पैसे बचाने का कभी ख्याल भी नहीं आता।

एक बार मेरे पूछने पर उसने बताया कि पैसे बचाकर वह करे भी क्या? शादी तो हुई नहीं। गांव में अपने पिता से झगड़ कर बरमा आ गया। उसे भी कुछ भेजना नहीं पड़ता। न वह इससे कुछ उम्मीद करता है। अतः जो कमाता है उसे खर्च कर सदा मस्त रहता है।

पिता से झगड़ा करके क्यों आया, यह पूछने पर उसने अपने परिवार की दुःखभरी स्थिति कह सुनायी। वह यू.पी. (उन दिनों के युनाइटेड प्रोविंस) के बस्ती जिले में किसी गांव का रहने वाला है। उसकी एक बड़ी बहन है जिसका निकाह हो चुका। मां का इंतकाल हो चुका। अकेला बाप है और एक बूढ़ा दादा। दोनों में रोज खटपट रहती है। दादा बहुत भला है, बाप बड़ा गुस्सैल। उसे बाप का व्यवहार रंचमात्र भी अच्छा नहीं लगता था। दादा की बातें बहुत अच्छी लगती थीं। दोनों के रोज-रोज के झगड़े से तंग आकर दो साल पहले वह बरमा भाग आया। उसके गांव के एक कोचवान की मदद से यहां यह काम मिल गया और इससे वह बहुत खुश है।

एक दिन मेरे यह पूछने पर कि उसके पिता और दादा में क्यों अनबन रहती है, उसने बताया कि कुछ वर्षों पहले जबकि वह (अहमद) छोटा था और उसकी बहन भी छोटी ही थी तब उसका पिता हिंदू से मुसलमान बन गया। ऐसा होते ही चाहे-अनचाहे सारा परिवार मुसलमान हो गया। बूढ़े बाबा के अनेक हमउम्र हिंदू मित्र थे। अब वह उनके साथ उठने-बैठने

लायक नहीं रह गया। न पहले की भांति उनके साथ चौपाल में बैठ कर हुक्का पी सके, न उनके घड़ों का पानी पी सके। गांवभर में उसकी उम्र वाले मुसलमानों में से कोई भी ऐसा नहीं था जिसे वह अपना जिगरी दोस्त कह सके। उसकी जिंदगी बेजार हो गयी। इसी बात को लेकर वह मेरे पिता को कोसता रहता है और पिता चिढ़ कर उस पर झल्लाता रहता है। मुसलमान हो जाने से मेरी मां भी बहुत दुःखी थी और इसी दुःख में उसका इंतकाल हो गया। बहन का निकाह समीपवर्ती गांव के एक मुस्लिम युवक से कर दिया गया। मैं भी घर के तनाव-भरे वातावरण से तंग आकर यहां भाग आया। अब घर में पिता और दादा ही रह गये। दोनों खूब झगड़ते होंगे।

इतना सुनने पर मैं यह जानने के लिए उत्सुक हुआ कि आखिर उसका पिता मुसलमान क्यों हो गया। इस पर उसने अपने परिवार की बीती हुई दर्दनाक कहानी कह सुनायी। उसने बताया – तब वह बहुत छोटा था। उसे पता नहीं उसके पिता से क्या भूल हुई कि गांव की पंचायत ने उसे जात-बाहर कर दिया। अब जात-बिरादरी से हमारा विवाह-शादी का रिश्ता नहीं रह गया। हुक्के-पानी का संबंध भी नहीं रहा। मुझे यही बताया गया कि हमारे पिता से गांव के सरपंच की पुरानी दुश्मनी थी। उसने इसी का बदला लिया। हमारे दादा पंचायत के सामने बहुत रोये-गिड़गिड़ाये तो पंचायत ने दंड-स्वरूप अमुक संख्या में ब्राह्मणों को भोजन खिला कर प्रायश्चित्त करने पर वापस जात में ले लिए जाने का फैसला सुनाया। संख्या कम करने की मिन्नत की गयी लेकिन मंजूर नहीं हुई। पिता की इतनी सामर्थ्य नहीं थी। घर में जो दाल-चावल खाते हैं वही खिलाना हो तो किसी प्रकार खिला देते पर ब्राह्मणों की अपनी जिद थी कि कच्ची रसोई नहीं खायेंगे। घी में तली हुई पूड़ी और साग सहित एक मीठा भी परोसना होगा। बाबा इस बात के लिए राजी थे, यद्यपि ऐसा करने का अर्थ था हमारे परिवार के लिए कठिनाई से गुजारे लायक खेती की जो छोटी-सी जमीन थी उसे गिरवी रख कर महाजन से रुपये लिये जायं। पिता इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं था। पंचायत कोई रियायत देने को तैयार नहीं थी। इस अवस्था में पिता ने मुसलमान होने का निर्णय कर लिया। इस कारण सारा परिवार मुस्लिम हो गया। बाबा को यह बिल्कुल बरदाश्त नहीं हुआ।

उसने आगे कहा कि जब से बरमा आया हूं, इतने पैसे कमाता हूं जितने कि मेरे बाप-दादा ने कभी सारी जिंदगी में भी नहीं देखे होंगे। कभी-कभी तो जी चाहता है कि मुझे कोई फिर से हिंदू बना ले तो मैं यहां से पैसे बचा कर गांव लौटूं और पंचायत को खुश करने के लिए वे जितने चाहे उतने ब्राह्मणों को जी भर के पूड़ी-मिठाई की पक्की रसोई खिलाऊं। यह प्रायश्चित्त पूरा होते ही पंचायत हमें जाति-बिरादरी में वापस ले लेगी और बाबा कितने खुश हो जायेंगे। अपने बुढ़उ-बुढ़उ संगी-साथियों के साथ हुक्का-पानी पी सकेंगे।

यह कहते-कहते अहमद की आंखों में चमक आ गयी। एक चमक मेरी आंखों में भी आयी। अरे, यह पुनः हिंदू बनना चाहता है तो हम इसे क्यों न बनायें। जानता था कि हमारा कट्टर सनातनी समाज इसके लिए किसी हालत में तैयार नहीं होगा। परंतु आर्यसमाज तो प्रसन्न होकर इस कार्य को पूरा करेगा। मैं आर्यसमाज के पंडित जी से मिला। वे तुरंत सहमत हो गये। उन्होंने इतना जरूर कहा कि कोई जोर-जबरदस्ती न हो। अन्यथा सांप्रदायिक दंगा हो जाने का डर है। यदि वह अपने दृढ़ मन से तैयार है तो उसकी शुद्धि करने में हमें कोई ऐतराज नहीं।

और फिर बड़ी धूमधाम से शुद्धिकरण का आयोजन हुआ। हवन हुआ, यज्ञ हुआ, वेदमंत्र पढ़े गये। उसे नहला-धुला कर नये कपड़े पहनाये गये। गले में जनेऊ डाला गया। मुझे याद नहीं कि सिर पर चोटी रखी गयी कि नहीं। जनेऊ अवश्य पहनाया गया था। वह भी बड़ा खुश, हम भी बड़े खुश। अब इसके आगे कठिनाइयां शुरू हुईं। पहले तो उसके मोहल्ले के मुसलमान कोचवानों ने उसे बहुत डांटा-फटकारा। लेकिन वह आजाद था। घोड़ागाड़ी के मालिक ने कोई ऐतराज नहीं किया तो उसे अब किसका भय? वह अपने बलबूते पर कमाता है और अपने भविष्य के निर्णय के लिए खुद-मुख्तार है। यहां तक तो बात ठीक हुई पर जब उसने यह सूचना अपने घर भेजी तो बाबा की ओर से संदेश आया कि तुमने जो किया, अच्छा किया पर इससे यहां की हालत सुधरने वाली नहीं है। हम अब ब्राह्मणों को हजार भोजन कराकर खुश करना चाहें, एक बार जात-बाहर होने पर और मुसलमान बन जाने पर पुनः हमें जात-बिरादरी में नहीं लिया जा सकता।

दादा ने यह भी लिखा कि तुम्हारे हिंदू हो जाने पर भी यहां गांव का कोई हिंदू परिवार तुम्हें अपनी लड़की नहीं देगा। वहां के हिंदू यदि तुम्हें अपनी लड़की दे दें तो तुम हिंदू ही बने रहना, मैं खुश हूंगा। परंतु यहां भी कौन हिंदू उसे अपना दामाद बनाता? बेचारे अहमद का मुँह उतर गया। लेकिन फिर भी मुरझाये मन से अपने काम-धंधे में लगा रहा। कुछ दिनों के बाद मजबूरन उसने फिर कलमा पढ़ा और मुस्लिम हुआ। परंतु उसके चेहरे पर पहले जैसी रौनक लौट कर नहीं आयी। इस दुःखद घटना से मेरा मन भी बहुत उदास हुआ। आर्यसमाज के पंडितजी भी उदास हुए। उन्होंने कहा – हमें केवल उगलना आता है, निगल कर पचाना नहीं आता।

इसी प्रसंग में मेरे बहनोई महादेवजी नाथानी ने (जो कि बहुत कट्टर सनातनी थे) बीरबल और अकबर की एक कहानी कह सुनायी। पता नहीं कहां तक सच है, पर प्रचलित अवश्य है।

एक बार अकबर के मन में आया कि मैं हिंदुस्तान में रहता हूं तो मुझे हिंदू बनकर रहना चाहिए। तभी यहां की प्रजा का श्रद्धाभाजन बन सकूंगा। उसने बीरबल को बुला कर कहा कि मुझे हिंदू बनाने का सारा इंतजाम करो। बीरबल ने कहा – जहांपनाह! यह असंभव है। परंतु जब अकबर ने जिद्द की तो उसने दो दिन की मोहलत मांगी। दूसरे दिन वह यमुना के किनारे एक गदहे को खूब रगड़-रगड़ कर नहलाने लगा। अकबर के पास यह खबर पहुँची। बीरबल को क्या हो गया है? उसे गदहे पर इतना मोह क्यों उमड़ा? उसने बीरबल को बुला कर पूछा, यह क्या कर रहे हो? उसने कहा, जहांपनाह! इस गदहे को रगड़-रगड़ कर, नहला-धुला कर घोड़ा बना रहा हूं। बादशाह ने कहा, तुम पागल हो गये हो! कभी गदहा घोड़ा बन सकता है? तब बीरबल ने सिर झुका कर कहा, जहांपनाह! यही तो मैं कहता हूं कि क्या कभी कोई मुसलमान हिंदू बन सकता है?

यह कहानी सुना कर महादेवजी जोरों से हँसे और कहा कि मैं पहले ही कहता था कि तुम इस जंजाल में मत पड़ो। तुम्हें क्या मिला? उस बेचारे की जिंदगी खराब हो गयी। मेरा मन अधिक उदास हो गया। जाति-बहिष्कार के दुःखद दुष्परिणाम की यह दर्दभरी घटना हृदय में गहराई तक कांटे की तरह चुभती रह गयी।

उपनयन संस्कार

इसी चुभन को गहराने वाली एक और घटना स्मृति-पटल पर उभर आयी।

उन्हीं दिनों आर्यसमाज के माध्यम से यह जानकारी हुई कि अपने देश में एक समय ऐसा था जबकि ब्राह्मण और क्षत्रिय ही द्विज कहलाते थे। वे ही उपनयन संस्कार के अधिकारी थे। वैश्य, शूद्र और उनके साथ-साथ सभी नारियां अद्विज कहलाती थीं, अवर्ण मानी जाती थीं। मुझे बतलाया गया कि वैश्य वर्ग जो कभी केवल खेती-बाड़ी और गो-पालन पर ही निर्भर करता था, आगे चल कर देश-विदेश में विशद मात्रा में वाणिज्य-व्यवसाय करने लगा और उनमें से अनेक धनकुबेर हो गये। क्षत्रिय राजाओं के समान उनसे भी पुरोहितों को मोटी दक्षिणा मिलने लगी तो उन्होंने अपने नये, समृद्ध यजमानों की पदोन्नति की। उन्हें भी अवर्ण से सवर्ण बना लिया। उनका भी यज्ञोपवीत संस्कार होने लगा। वे भी अद्विज से द्विज की श्रेणी में प्रवेश पा गये। मुझे यह सुन कर बहुत बुरा लगा। इसका अर्थ यह हुआ कि यह ऊंची-नीची जाति का भेदभाव पुरोहित कृत है। क्षत्रिय राजाओं से बहुत दान-दक्षिणा मिलती थी, अतः वे सवर्ण माने गये, उच्च वर्ण के माने गये। उपनयन संस्कार करवा कर द्विज के पद पर स्थापित हुए और अब बनियों से प्रभूत धन मिलने लगा तो उन्हें भी बराबर का पद मिल गया। वे भी सवर्ण हो गये। और ये शूद्र जो सदा से गरीब रहते आये, उनसे कुछ प्राप्त करने की आशा कभी थी भी नहीं। अतः भले वे सद्गुणी हों, परंतु नीची जाति के अवर्ण ही बने रह गये। उनका उपनयन संस्कार करके उन्हें द्विज बनाने के लिए पुरोहितवर्ग उद्यत नहीं है। अतः धर्म का उच्च स्थान धन से खरीदा जाता है, गुणों से नहीं। ऐसे व्यावसायिक यज्ञोपवीत संस्कार के प्रति मेरे मन में जुगुप्सा पैदा हुई। मैंने निर्णय किया कि जब तक समाज में यह भेदभाव रहेगा तब तक मैं यज्ञोपवीत धारण नहीं करूंगा।

परंतु पिताजी को मेरा यह प्रण कैसे समझाता। उनकी नजरों में सामाजिक प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक था। परंतु उन्हीं दिनों मांडले के सनातनी समाज में कुछ ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हुईं जो मेरे निर्णय को सफल बनाने में सहायक सिद्ध हुईं।

हमारे परिवार का उपनयन संस्कार कराने वाले पुश्तैनी पुरोहित के चरित्र के बारे में कुछ दिनों से दबी जबान में कटु आलोचना हो रही थी। अब खुले आम बदनामी होने लगी। हमारे घर के मंदिर में पिताजी से नित्य षोडशोपचार पूजन करवाने वाला पुरोहित भी उन्हीं दिनों दुराचरण के कारण बदनाम हुआ और पिताजी ने उसे पुजारी के दायित्व से हटा दिया। समाज में ये दो ही व्यक्ति मुझे यज्ञोपवीत पहनाने के हकदार थे। मैंने पिताजी से कहा कि मैं किसी दुश्चरित्र व्यक्ति को अपना धर्म-गुरु कैसे मान सकता हूं? वे भी असमंजस में पड़ गये। मुझ पर कैसे दबाव डालते? तीसरा विकल्प यह था कि आर्यसमाज के पं. मंगलदेवजी शास्त्री से उपनयन संस्कार करवाऊं। परंतु इससे तो सारे सनातनी समाज में तहलका मच जायगा। पिताजी इस विरोध का सामना करने को तैयार नहीं थे। अतः मेरी बात बन गयी। मैं यज्ञोपवीत के बंधन से सदा के लिए मुक्त हो गया। जन्मभर शूद्र ही बना रह गया। कभी जनेऊधारी द्विज न बन सका। अच्छा ही हुआ।

परंतु इसे लेकर परिवार में एक बड़ी कठिनाई खड़ी हो गयी। मैं जनेऊ नहीं ले रहा इसलिए भाई बाबूलाल ने भी जिद्द पकड़ ली कि वह भी जनेऊ नहीं लेगा। उन्हीं दिनों भाई बाबूलाल का विवाह निश्चित हुआ था। इस कारण धर्मसंकट पैदा हो गया। पुरोहित ने कहा कि यज्ञोपवीत बिना किसी भी सवर्ण जाति के व्यक्ति का विवाह संस्कार नहीं किया जा सकता। मेरी तरह बाबूलाल को भी जाति के आधार पर समाज में ऊंच-नीच की व्यवस्था स्वीकार्य नहीं थी। अतः वह अपने निर्णय पर डटा रहा। लेकिन विवाह तो संपन्न हुआ ही। मैं भी उपस्थित था, पर स्मरण नहीं कि पुरोहितजी ने क्या विकल्प अपनाया। इस प्रकार बाबूलाल भी मेरी तरह बिना यज्ञोपवीत के शूद्र ही बना रह गया।

उन दिनों तो इसकी कोई कल्पना भी नहीं थी कि आगे चल कर जीवन में ऐसा शुभ अवसर आयगा जबकि हम दोनों धर्म के शुद्ध दृष्टिकोण से सही अर्थ में द्विज बन सकेंगे, अस्तु।

आर्यसमाज से यह जान कर मन प्रसन्न हुआ कि वे जातिवाद की, यानी ऊंच-नीच की, मिथ्या मान्यता को स्वीकार नहीं करते और न ही छुआछूत को। वे सामान्य शूद्र को ही नहीं, बल्कि समाज के अछूत माने

जाने वाले यानी अतिशूद्र, अन्त्यज के लिए भी यज्ञोपवीत संस्कार का अवसर प्रदान करते हैं। इससे मन में एक उत्सुकता जागी।

अतिशूद्र का उपनयन संस्कार

हमारे घर के समीप ही चौराहे के फुटपाथ पर एक मोची जूते गांठा करता था। किशोर अवस्था के अति उत्साह के मारे मैंने उससे बातचीत शुरू की और कुछ दिनों में उसे जनेऊ लेने के लिए तैयार कर लिया। आर्यसमाज के पंडितजी ने उसका यज्ञोपवीत संस्कार किया तथा हम सबने प्रसन्न चित्त से उसके हाथ से मिठाई खायी। वह भी खुश, हम भी खुश। अब वह फुटपाथ पर जूते मरम्मत करे तो कंधे पर पड़े जनेऊ का कुछ हिस्सा बनियान के बाहर निकाल रखे, जिससे कि लोग देख सकें कि वह जनेऊधारी द्विज है।

लेकिन कुछ महीनों के पश्चात हमने देखा कि अब वह जनेऊ नहीं पहनता। पूछने पर उसने अपनी रामकहानी कह सुनायी। उसने बताया कि वह हरियाणा (उन दिनों के पंजाब) के किसी गांव का रहने वाला है। उसने अपने घरवालों को लिख दिया था कि वह अब बामन-बनियों की तरह जनेऊ पहनने लगा है। वहां से उत्तर आया कि बरमा में भले पहनते रहना पर यहां अपने गांव में आने पर तुझे अपने मोचीपाड़े में ही रहना है। बामन-बनियों के मोहल्ले में तुझे कोई रहने नहीं देगा। और फिर यहां न कोई आर्यसमाज है न आर्यसमाजी। यहां तुझे जनेऊ पहने देखेंगे तो, और-तो-और, हमारे अपने जाति-बिरादरी वाले भी तुझ पर पत्थर फेंकेंगे और जनेऊ न निकाला तो जात-बिरादरी के बाहर कर देंगे। तब क्या भंगियों के पाड़े में जाकर रहोगे? इस डर के मारे वह जनेऊ यहीं उतार कर अपने गांव चला गया। फिर कभी लौट कर नहीं आया।

जाति-सुधार के इस दूसरे असफल प्रयोग से भी मन बहुत उदास हुआ। जाति-बहिष्कार की जंजीरें कितनी मजबूत हैं, यह समझ में आने लगा। ऊंची जाति ही नहीं, नीची-से-नीची जाति में भी जाति-बहिष्कार किये जाने का कितना खौफनाक माहौल है। इस जकड़न की स्पष्टता देखते-देखते समाज में फैली हुई जात-पांत की, ऊंच-नीच की, छूत-अछूत की बुराइयों के प्रति मन-ही-मन घोर विद्रोह जाग उठा।

जाति-बहिष्कार का भय

इसी सिलसिले में एक घटना और याद आयी। यह तो और भी पुरानी घटना है। उन दिनों मैं लगभग सात-आठ वर्ष का था।

हमारी पारिवारिक कपड़े की दूकान के कई कर्मचारियों में एक था – जयनारायण शुक्ल। वह कुछ पढ़ा-लिखा भी था, मेहनती और ईमानदार भी। वह उत्तर बरमा के छोटे-बड़े गांव-नगरों में जा-जाकर कपड़े के दूकानदारों को हमारे यहां के कपड़े बेचता और पहले उधार में बेचे हुए की उगाही भी वसूल करता। वह मांडले शहर में बहुत कम रह पाता था, अधिकतर बाहर ही रहता था। वहां वह एक वक्त ही भोजन पकाता जो दोनों वक्त काम आता। उसका अधिक समय यात्रा में ही बीतता था। पानी कुएं से या नदी से स्वयं निकाल कर पीता पर कभी-कभी आलस के मारे या जल्दी के मारे किसी बरमी की हंडी में से भी पानी ले कर पी लेता। गलती से यह बात उसने अपने किसी साथी कर्मचारी को बता दी और बात फैल गयी। हमारी ही दूकान का एक बूढ़ा कर्मचारी था – रामधन कुर्मी, जो सामान्य मजदूरी का काम करता था। संयोग से वह जयनारायण के गांव का ही था। जब उसने यह सुना तो जयनारायण को फटकारते हुए कहने लगा, अरे, तूने अपना धर्म भ्रष्ट कर लिया, जीवन नष्ट कर लिया। मैं गांव लौटूंगा तो सबको बताऊंगा। यह सुन कर जयनारायण के चेहरे का रंग उड़ गया। ब्राह्मण होते हुए भी उसने बूढ़े कुर्मी के घुटने छूकर गिड़गिड़ाते हुए उससे क्षमा मांगी और कहा, बाबा, कहीं ऐसा न कर देना।

यह सब देख कर मैंने कौतूहलवश बूढ़े बाबा से पूछ लिया कि इसने अपना धर्म कैसे नष्ट कर लिया? तिस पर बूढ़े ने बड़े गर्व के साथ कहा – "अरे बबुआ, हमें ई मुलुक में आये चालीस बरस हुइ गवा। यहां आकर ताड़ी भी पी, जूआ भी खेला, और भी सारे कुकर्म किये। मुला आपन धरम नहीं छोड़ा। और ई मुरदवा को देखो। अभी यहां आये पांच बरस भी नहीं भवा, आपन धरम-करम सब छोड़ बैठा।"

जब मैंने धर्म छोड़ने के बारे में पुनः जानना चाहा तो उसने बताया, "जात का कुर्मी होते हुए भी मैंने कभी किसी बरमी के हाथ का छूआ पानी

नहीं पिया। इसे देखो, बाम्हन होकर भी इसने बरमी की हंडिया का पानी पी लिया।"

उस बाल्यावस्था में धर्मपालन की इस व्याख्या का मन पर गहरा और गलत प्रभाव पड़ा। साथ-साथ यह भी समझ में आया कि जयनारायण उसके सामने इस कारण गिड़गिड़ा रहा था कि कहीं यह बात गांव वालों को न मालूम हो जाय। अन्यथा वे उसे जात-बाहर कर देंगे। ऐसा होने पर प्रायश्चित्त के लिए बहुत धन खर्च करना पड़ेगा और यही नहीं, बड़ी बदनामी भी होगी। जाति-बहिष्कार का ऐसा भय था उन दिनों। यह लगभग सन १९३० की पुरानी बात है। इससे पहले की सदियों में तो अवश्य इससे भी बुरा हाल रहा होगा।

छुआछूत की पराकाष्ठा

और फिर किशोर अवस्था को प्राप्त होते-होते किसी बरमे का छूआ पानी न पीते हुए धर्मपालन की मान्यता अधिक स्पष्ट होती गयी। मैं देखता, हमारे यहां भी कोई बरमे का छूआ पानी नहीं पीता था। घर में पीने के पानी को तो कोई बरमा कहां छूने आता परंतु बाहर जाने पर यह नियम कड़ाई से पालन किया जाता था। मुझे याद है, हम स्कूल जाते तो पीने का पानी साथ ले जाते। कम पड़ता तो म्युनिसिपैलिटी के नल में अंजलि लगा कर भले पी लेते परंतु स्कूल की हंडिया में भरा हुआ पानी कभी नहीं पीते। स्कूल में सभी जाति के नौकर थे। कौन जाने किसने पानी भरा हो।

रेलगाड़ी की लंबी यात्रा होती तो बड़े बुजुर्गों के साथ कभी-कभी हम बच्चे भी साथ जाते। यात्रा के लिए भोजन के साथ पीने का पानी भी लेकर चलते थे। संयोगवश कभी पानी कम पड़ जाय, यद्यपि ऐसा कभी हुआ नहीं, तो प्यासे भले रह जायं, किसी स्टेशन पर हंडियों में भरे पानी को कभी छूते तक नहीं थे।

इससे भी बुरी एक बात यह देखता कि रेल के डिब्बे में जिस पाटिये पर बैठ कर हम यात्रा कर रहे होते और उसी पर कोई बरमा बैठा होता तो भोजन का समय आने पर कुछ देर के लिए उसे उठा देते। किसी बरमे के साथ एक ही तख्त पर बैठ कर भोजन कर लें तो धर्म भ्रष्ट हो ही जाय। और फिर कुछ कट्टरपंथी सनातनी लोग तो रेलगाड़ी की यात्रा में न भोजन का एक कौर मुँह

में डालें और न पानी की एक बूंद। जब सारी गाड़ी में म्लेच्छ-ही-म्लेच्छ बैठे हों तब उसी गाड़ी में बैठ कर भोजन करके अथवा पानी पीकर अपना धर्म कैसे भ्रष्ट होने देते। कुछ ऐसे भी लोग थे जो जब कभी कलकत्ते और रंगून के बीच जहाज से यात्रा करते थे, जिसमें ऋतु, मौसम के अनुसार तीन से पांच दिन तक लग जाते थे तो वे इतने दिनों निरन्न और निर्जल उपवास करते थे क्योंकि उस जहाज में लगभग हजार व्यक्तियों में अधिकांश तो अवर्ण लोग ही रहते, मलेच्छ ही रहते।

छुआछूत की अंधपरंपरा के कारण बरमों के मुकाबले अपने आप को अधिक पवित्र होने की मिथ्या मान्यता को लिए हुए हम अपने अहंभाव को और बरमों के प्रति अपनी घृणा को पुष्ट ही करते रहते थे। कुछ पीढ़ियों से बरमा में रहते हुए भी इसी कारण हम वहां के निवासियों से समरस नहीं हो पाये। बल्कि दुर्भावना ही बढ़ी।

इस दुर्भावना के कुछ शर्मनाक उदाहरण

बरमा में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या सामान्यतः कुछ अधिक होती है। पुरुष वहां साधारणतया एकपत्नीव्रत होते हैं। अतः अनेक बरमी युवतियां कुँवारी रह जाती हैं। उनमें से कुछ तो आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत ले लेती हैं और लोगों द्वारा सम्मान की दृष्टि से देखी जाती हैं। बहुत-सी महिलाएं गैर-बरमियों से विवाह कर लेती हैं। वे अधिकतर चीनी अथवा भारतीय मुस्लिमों से विवाह करती हैं क्योंकि उनके समाज में ये सरलता से समरस हो जाती हैं। भारतीय हिंदुओं से इनका विवाह कम ही होता है। होता भी है तो ऊंच-नीचजन्य छुआछूत के भेदभाव के कारण उनके साथ अकसर रखैल का-सा व्यवहार किया जाता है जो कि अमित दुर्भावना जगाने का कारण बनता है।

इस संदर्भ में एक दर्दनाक घटना

तखिन ताखिन बरमा का एक दबंग राष्ट्रीय नेता था। अपनी ईमानदारी, अध्यवसाय, संस्थागत व्यवस्थापनकला की दक्षता और अथक परिश्रम के कारण वह ऊ नू के राज्यकाल में अखिल ब्रह्मदेशीय शासकीय पार्टी, 'फ.स.प.ल.' के प्रधान सचिव का महत्त्वपूर्ण पद संभाले हुए था। कुछ दिनों के लिए वह केंद्रीय सरकार में वाणिज्यमंत्री भी रहा।

बरमा में चावल बहुत उपजता है और भारत सदा से इसका प्रमुख ग्राहक रहा है। कुछ मोल-मोलाई करके अधिकांश बरमी चावल भारत ही खरीदता रहा है। इस बार चावल का सौदा करने के लिए इस नये वाणिज्यमंत्री के नेतृत्व में बरमा का व्यापारिक प्रतिनिधिमंडल नई दिल्ली गया। दो-चार दिन की बातचीत के बाद ही बिना सौदा किये यह प्रतिनिधि-मंडल रंगून लौट आया। गुस्से से भरे वाणिज्यमंत्री ने प्रेस को वक्तव्य दिया कि हम अपना चावल समुद्र में भले फेंक देंगे, पर भारत को नहीं बेचेंगे। दोनों देशों के मैत्री-संबंधों में बड़ी कड़वाहट पैदा हो गयी।

मंत्री महोदय से मेरा परिचय तो था पर घनिष्ठता नहीं थी। मैं सदा दोनों देशों के मैत्री-संबंधों को सुदृढ़ बनाने में प्रयत्नशील रहता आया। अतः प्रतिनिधिमंडल के किसी परिचित सदस्य से वस्तुस्थिति की जानकारी प्राप्त की। उन दिनों भारत के खाद्यमंत्री रफी अहमद किदवई थे। वे अपने सौम्य व्यवहार के लिए प्रसिद्ध थे। सौदा हो या न हो परंतु संबंध बिगाड़ने में उनका हाथ नहीं हो सकता था। पता चला कि खाद्य मंत्रालय के किसी अहंकारी सचिव अथवा प्रमुख अधिकारी के दुर्व्यवहार के कारण बात बिगड़ी।

वैसे बरमा के मंत्री महोदय को भी भारतीयों से जन्मजात नफरत थी। उसका भी कारण विदित हुआ। उत्तर प्रदेश का पांडे नामक एक भारतीय वर्षों पहले बरमा आकर बस गया था। उसने एक बरमी महिला से विवाह कर उसे घर में बसा लिया था। वह वर्षों से उसके साथ दक्षिण बरमा के एक छोटे-से कस्बे में रहता था। वहीं इस मंत्री महोदय का जन्म हुआ। जैसे-जैसे उम्र बढ़ी वैसे-वैसे वह अपनी मां के प्रति पिता का दुर्व्यवहार देख-देख कर दुःखी होता गया। पिता कट्टर ब्राह्मण था। मां के हाथ का भोजन तो दूर, पानी तक नहीं पीता था। कुएं से स्वयं पानी निकाल कर लाता था और अपना भोजन स्वयं पकाता था। इस मामले में अपनी पत्नी को बहुत घृणा से देखता था। हो सकता है कभी अपशब्द भी कह देता हो। इसे लेकर बहुधा दोनों का झगड़ा भी होता था। अपनी माता के प्रति किया गया पिता का यह दुर्व्यवहार पुत्र को बहुत चुभता था। मन-ही-मन वह पिता के प्रति द्वेषभाव पैदा करता रहता था। वह देखता कि पिता उसकी माता के साथ सारे शारीरिक संबंध रखता है पर मां कभी गलती से उसके पानी को छू भी दे तो क्रुद्ध हो उठता है। उसे अपवित्र हुआ मान कर मां को खरी-खोटी सुनाता है।

यह द्वेष पराकाष्ठा पर तब पहुँचा जबकि युवा होने पर पुत्र ने अपने पिता से कहा कि उसका विवाह किसी भारतीय ब्राह्मण की पुत्री से करवा दे। यह सुन कर पिता आगबबूला हो उठा और पुत्र के गाल पर कस कर एक तमाचा लगाते हुए बोला कि कोई ब्राह्मण अपनी लड़की तुझ जैसे ओछी जाति वाले म्लेच्छ को कैसे देगा? इस अपमान से अत्यंत पीड़ित होकर वह घर छोड़ कर चला गया। मन में यह दृढ़ संकल्प लेकर गया कि मैं किसी भी प्रकार किसी भारतीय ब्राह्मण की लड़की से अवश्य विवाह करूंगा और उसके साथ वैसा ही दुर्व्यवहार करूंगा जैसा कि मेरे पिता ने मेरी माता के साथ किया। इस प्रकार अपनी माता के अपमान का बदला लूंगा। यद्यपि अपने इस उद्देश्य में वह सफल नहीं हुआ परंतु उसके मन में भारतीयों के प्रति घृणा और द्वेष का भाव संवर्धित होता गया। जातपांत के भेदभाव की तथा छुआछूत की अमानवीय प्रथा के कारण हमने देश और विदेश में सर्वत्र अपनी हानि ही की।

ऐसी ही एक और घटना

ऊ नू की बरमी सरकार के एक अन्य मंत्री ऊ विन से मेरी घनिष्ठता हुई। उससे मालूम हुआ कि वह भी एक भारतीय ब्राह्मण और बरमी मां का पुत्र था। वह भी पिता के दुर्व्यवहार से दुःखी होकर किशोर अवस्था में घर से भाग गया था। वह किसी मुस्लिम समुदाय के फेर में पड़ कर मुस्लिम हो गया। उसने बताया कि उसकी खतनी भी हो गयी थी। परंतु जब उसकी मां को यह पता चला तो उसे समझा-बुझा कर घर वापस ले आयी। वह भगवान बुद्ध के प्रति अत्यंत श्रद्धालु थी। उसने अपने पुत्र को समझाया कि तुझे हिंदुओं से घृणा है तो मुस्लिम क्यों हुआ? बौद्ध बन जा। और उसे किसी बुद्ध विहार में छोड़ आयी। वहां वह बुद्ध की वाणी का अध्ययन कर उसमें पारंगत हो गया और आगे चल कर स्वतंत्र बरमी सरकार के धार्मिक विभाग का केंद्रीय मंत्री बना। उसके मन में हिंदुओं के प्रति उतनी कटुता तो नहीं थी, परंतु सद्भावना भी नहीं थी। जब हमारा अपना व्यवहार दुर्भावपूर्ण हो तो हम सद्भावना की आशा भी कैसे करें?

छिः कला

उन दिनों की तो बात ही क्या? आज भी यह सच है कि एक औसत भारतीय की अपेक्षा एक औसत बरमी अधिक शील-सदाचारी है। कारण स्पष्ट है, एक बरमी बचपन से ही सीखता है कि मन, वाणी या शरीर से जैसा भी कर्म करूंगा – कुशल या अकुशल – उसका अच्छा या बुरा फल मुझे ही भोगना पड़ेगा। धर्म के इन बँधे-बँधाये नियमों में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। न कोई देवी या देवता और न स्वयं बुद्ध ही। कर्म करते हुए वह अकसर यही सोचता है कि कहीं कोई अकुशल कर्म न कर बैठूं क्योंकि उसका दुष्फल तो आयगा ही और उसे मुझे ही भोगना पड़ेगा। बचपन से ही वह यह पाठ पढ़ता ही नहीं, समझता भी आया है –

"जगत में ऐसा कोई स्थान नहीं है, न अंतरिक्ष में, न मध्य समुद्र में, न किसी पर्वत की गहन गुफा में, जहां रह कर कोई व्यक्ति अपने पापकर्मों के दुष्फल भोगने से बच सके।"

और दूसरी ओर हमारे यहां कोई हजार पाप करे लेकिन उनके दुष्फलों का दुःख भोगे बिना ही सरलता से मुक्ति पाने के लिए, हजार उपाय उपलब्ध हैं। ऐसे सस्ते उपायों के रहते दुष्कर्म करने से कोई क्यों झिझकेगा भला?

अपने से अधिक शीलवान बरमी लोगों के प्रति हम ऐसी दुर्भावना प्रदर्शित करें कि उनका छूआ पानी पीना तो दूर, जिस पट्टे पर बैठे हों उस पर बैठ कर भोजन और पानी तक ग्रहण नहीं करें, इसमें अपना धर्म नष्ट होता हुआ मानें, उनके प्रति ऐसा अशोभनीय व्यवहार हमारे ओछेपन को ही प्रकट करता था। जिस देश में रहते हैं, जिस देश की कमाई से अपना भरण-पोषण करते हैं, उसी देश के लोगों के प्रति इतनी घोर घृणा का भाव रखें, यह कहां तक न्यायोचित है? घृणा से तो घृणा ही उत्पन्न होगी। और यही हुआ।

मेरे दादाजी उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बरमा गये थे। उन दिनों का वर्णन करते हुए बताया करते थे कि देश के सामान्य नागरिक ही नहीं, बल्कि सरकारी अधिकारी भी एक आगंतुक भारतीय को देख कर आदर से सिर झुकाते थे और उन्हें 'कला' शब्द से संबोधित कर सम्मान प्रदर्शित करते थे। 'कला' शब्द पालि के 'कुल' यानि कुलीन शब्द का ही बरमी अपभ्रष्ट उच्चारण है। परंतु बहुत समय नहीं बीता जबकि उन्होंने हमारे लोगों द्वारा उनके प्रति उपरोक्त प्रकार का घृणापूर्ण अभद्र व्यवहार होते देखा और यह भी देखा कि हमारे जीवन-व्यवहार में सामान्य सदाचरण का भी अभाव है; तब स्वभावतः उनके मन में हमारे प्रति घृणा जागने लगी। ऐसी अवस्था में उनके द्वारा हमारे लिए प्रयुक्त आदरवाचक 'कला' शब्द घोर अपमानजनक गाली का पर्याय बन गया।

इतना ही नहीं, कभी-कभी हमारे लोगों के लिए 'छिः कला' शब्द का भी प्रयोग होने लगा। बरमी भाषा में 'छिः' कहते हैं पाखाने को, मल को। 'छिः कला' माने वे भारतीय जो अपने सिर पर पाखाना ढोते हैं। जब किसी भी भारतीय को 'छिः कला' कह कर संबोधित किया जाता तब यह उसके लिए अपमान की पराकाष्ठा होती। परंतु सच्चाई भी तो यही है। उन दिनों मैं देखता था मांडले शहर में हमारे घर के पाखाने से ही नहीं बल्कि सारे शहर का मल भारतीय मेहतर ही अपने सिर पर उठा कर ले जाते थे। यह घृणित काम कोई बरमी नहीं करता, कोई चीनी नहीं करता, किसी भी अन्य देश का व्यक्ति नहीं करता, तो 'छिः कला' शब्द का प्रयोग हमारे लिए न होकर किसी और के लिए कैसे होता? किसी भी भारतीय के प्रति असीम घृणा प्रकट करते हुए इस शब्द का प्रयोग अनुचित ही कहा जायगा। पर यह अनुचित प्रयोग हमारे द्वारा उनके प्रति किये गये अपमानजनक व्यवहार की प्रतिक्रिया का ही दुष्फल था।

जापानी युद्ध तथा तदनंतर

जिन घटनाओं और स्थितियों का अब तक संक्षेप में उल्लेख किया, वे अधिकांशतः पिछले जापानी युद्ध के पूर्व की हैं। युद्ध आरंभ होने पर १९४२ में मैं सपरिवार भारत आ गया। यहां राजस्थान के चूरू नगर में अपने पुरखों की हवेली में रहा। दो-तीन दिन बीतते-बीतते देखा कि एक मेहतरानी हवेली के पाखाने का मल एक पात्र में भर कर, अपने सिर पर उठाये ले जा रही है। यहां भी वही 'छिः कला' का घिनौना स्वरूप। घृणा ही नहीं, हमारी दूषित सामाजिक व्यवस्था के प्रति क्रोधभरे विद्रोह के भाव भी मन में धधक उठे। कोई मनुष्य ऐसा घिनौना कार्य करने के लिए क्यों मजबूर होता है? अपने ही समाज में ऐसा क्यों होता है? किसी का जाति-बहिष्कार करके, हुक्का-पानी बंद करके, समाज से रोटी-बेटी का संबंध-विच्छेद करके, गांव के बाहर ऐसे बहिष्कृत लोगों के बीच रहने को मजबूर कर देने से वह ऐसा घृणित काम न करे तो और क्या करे? हमारी दूषित समाज व्यवस्था का ही यह परिणाम है।

पांच वर्षों तक भारत भूमि में उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक अनेक यात्राएं कीं। मुख्य उद्देश्य तो आजीविका का ही था। परंतु इस बीच भारत की तत्कालीन राजनीतिक और सुदूर अतीत से जुड़ी हुई सामाजिक समस्याओं का भी गहन अध्ययन होता रहा। देश की दुर्दशा देखी और उसका मूलभूत कारण समझ में आने लगा। घोर विषमता पर आधारित इस सर्वथा अनीतिपूर्ण चक्रव्यूहात्मक सामाजिक रचना के रहते कोई भी नीतिपरक सुधार असंभव था। लोगों की अजीब मनःस्थिति देखी। इस रचना के चूड़ीदार उतराव में हर चूड़ी पर जो वर्ग स्थित है, अपने से ऊपर वाली चूड़ियों के बोझ से दबा है परंतु फिर भी उसे यह प्रसन्नताभरा संतोष है कि वह जिस पर स्थित है, वह चूड़ी अनेकों से ऊंची है। इस मिथ्या आत्म-संतोष के कारण उसमें इस दूषित समाज-व्यवस्था के विरुद्ध सिर उठाने का भाव ही नहीं जागता।

किसी भी कारण से बीच की चूड़ियों के वर्ग के किसी व्यक्ति पर या समूह पर जाति-बहिष्कार का विषास्त्र चला और यदि वह शीर्षस्थ कड़ी वालों को हरजाना भर कर प्रसन्न न कर सका तो ढुलकते-ढुलकते अंतिम चूड़ी पर ही जाकर टिका। शीर्षस्थ चूड़ी वालों पर तो ऊपर का कोई दबाव है नहीं। सारी सुविधा ही सुविधा है। अतः उन्हें इस व्यवस्था को बनाये रखने में एड़ी से चोटी तक का परिश्रम करते देखा। सबसे नीची चूड़ी वालों को किसी अन्य से ऊंचा होने का मिथ्या संतोष नहीं है क्योंकि उनके नीचे कोई और चूड़ी ही नहीं है। वे चिरकाल से पीड़ित हैं, दलित हैं, हर प्रकार से शोषित हैं। सदियों के शोषण और दमन द्वारा वे मूक हो गये हैं। विरोध की आवाज नहीं उठा सकते। उनमें से अनेक लोग समाज के इस निम्नतम बाड़े से छूट कर किसी भी अन्य बाड़े में बँधने का अवसर पाते ही प्रसन्न चित्त से उसमें बँध जाना पसंद करते हैं।

इस अमानुषिक सबल व्यवस्था के खिलाफ नक्कारखाने में तूती की आवाज सदृश कुछ निर्बल आवाजें भी उठती देखीं। पंजाब का 'जात-पांत तोड़क मंडल' या गांधीजी का 'अस्पृश्यता निवारण अभियान'। परंतु अधिक मुखर था महाराष्ट्र में बाबासाहब आंबेडकर का और दक्षिण में रामास्वामी नायकर का सक्रिय आंदोलन। दोनों की आवाजें अधिक बुलंद थीं जो आगे चल कर कुछ ठोस परिणाम भी लेकर आयीं।

जब-जब यह चूड़ीदार सामाजिक व्यवस्था इसी प्रकार सुदृढ़ बनी रही, तब-तब इसके हृदयविदारक दुःखद राजनीतिक परिणाम आते रहे हैं और भविष्य में भी आते रहेंगे। इस व्यवस्था को यथावत बनाये रखने के समर्थक इसकी उपादेयता की भ्रामक दलीलें पेश करते रहे हैं। ऐसा करते हुए वे अपनी भी हानि करते हैं, देश का भविष्य धूमिल करते हैं। ऐसा मुझे उन दिनों भी स्पष्ट प्रतीत होता था।

यही चातुर्वर्णी व्यवस्था जन्म पर आधारित न हो कर कर्म पर, गुणों पर, चरित्र पर और धर्म पर आधारित होती तो हमारा समाज इस प्रकार की अन्याय अनीतिपूर्ण घेरेबंदी में जकड़ कर नहीं रह जाता और राष्ट्र का एक बहुत बड़ा भाग सदा के लिए गुलामी का जीवन जीने के लिए बाध्य नहीं हो जाता। अपनी-अपनी योग्यता और क्षमतानुसार हर व्यक्ति राष्ट्र की

सर्वतोमुखी उन्नति में अपना योगदान देता और देश की सर्वांगीण उन्नति होती। इस जन्मजात वर्ण-विभाजन की अमानवीय व्यवस्था ने अनेक लोगों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी अछूत बना कर रख दिया, इस दूषण से हमारा समाज कलंकित न होता। उच्चवर्णीय होने की हमारी दंभ और अहंकार की गर्हित मनोवृत्ति ने हमें यह सोचने तक नहीं दिया कि इस सामाजिक दुर्व्यवस्था से पीड़ित कितने लोगों की हाय ने राष्ट्र की उन्नति में अवरोधक का काम किया है और अब भी कर रही है। अकारण अस्पृश्य कहे जाने वाले इन दुखियारे लोगों की असीम पीड़ा का बहुत नन्हा-सा अनुभव मुझे स्वयं हुआ जबकि कुछ अरसे के लिए मुझे स्वयं अछूत का जीवन जीना पड़ा और मर्मांतक पीड़ा में से गुजरना पड़ा।

एक व्यक्तिगत दर्दनाक अनुभव

जापानी युद्ध के दौरान आजीविका के लिए भारत भ्रमण करते हुए मुझे खांसी की शिकायत हुई। एक बार खांसी के बाद कफ में खून का चिह्न देखा। चूरू पहुँच कर डॉक्टर को दिखाया तो उसने कह दिया कि संभवतः टी.बी. का रोग हो। उन दिनों वहां एक्सरे की सुविधा उपलब्ध नहीं थी। अतः मुझे सुझाव दिया गया कि मैं जयपुर जा कर अपनी छाती की एक्सरे करवा लूं। चूरू से जयपुर जाते हुए रास्ते में झुंझुनू पड़ता है, जहां मेरा बचपन का एक मित्र रहता था। दोनों ने बरमा से पैदल रास्ते की यात्रा अलग-अलग पूरी की थी। अतः बरमा से बिछड़े हुए भारत आने पर भी हम एक-दूसरे से नहीं मिल सके थे। मित्र का आग्रह था कि जब मैं जयपुर जा रहा हूं तो एक दिन उसके यहां रुक जाऊं। मुझे भी यह स्नेहसिक्त आमंत्रण अच्छा लगा। अतः वहां एक रात के लिए रुक गया। शाम को वहां पहुँचा तो मित्र के साथ रात्रि का भोजन करके सोने के पहले देर तक दोनों एक-दूसरे की आपबीती सुनते-सुनाते रहे। सुबह यात्रा पर निकलने की जल्दी थी। अतः शीघ्र ही नहा-धोकर नाश्ते के लिए तैयार हुआ। वहीं पड़ोस में बरमा से आया एक अन्य परिचित व्यक्ति भी रहता था। उसने मेरे आने की बात सुनी तो मिलने चला आया। वह तपेदिक का पुराना रोगी था। उसके दोनों फेफड़े जर्जरित हो चुके थे। मेरे मित्र ने उसे भी मेरे साथ नाश्ता कर लेने का

आग्रह किया, जिसे वह नहीं टाल सका। इतने में मेरे मित्र के वृद्ध पिता अपने निवासकक्ष से बाहर आये। मैंने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने प्रसन्नचित्त से आशीर्वाद दिया। बातचीत में जब उन्हें पता चला कि शायद मैं टी.बी. का रोगी हूं तो वे चौंके। उन्होंने हम दोनों टी.बी. के रोगियों(?) के लिए नाश्ते का अलग प्रबंध करवाया। अलग-अलग थाली में न परोस कर, हम दोनों का नाश्ता एक ही पत्तल में परोसा गया। चाय के लिए दोनों को दो मिट्टी के कुल्हड़ दिये गये। स्पष्ट था कि पत्तल और कुल्हड़ तो नाश्ता कर लेने के बाद फेंक दिए जायेंगे। थाली और गिलास के साथ कहीं टी.बी. के कीटाणु घर में आ गये तो रोग उनके घर आ जायगा। मेरे मित्र ने अपने पिता को समझाने की चेष्टा की मुझे टी.बी. का रोग है, ऐसा निश्चित नहीं हुआ है। टी.बी. का जो पुराना रोगी है उसके साथ एक पत्तल में मुझे नाश्ता परोसना मेरे मित्र को जरा-भी अच्छा नहीं लगा। परंतु उसके पिता बहुत कड़े स्वभाव के जिद्दी व्यक्ति थे। साधारणतया उनका व्यवहार सौजन्यपूर्ण रहता था। परंतु किसी बात का निश्चय कर लें तो कोई उन्हें टस-से-मस नहीं कर सकता था। मेरे मित्र को बहुत बुरा लगा, परंतु लाचारी थी। यह अछूत का-सा व्यवहार मुझे तो और बुरा लगा। मेरे लिए असह्य हो गया। जी चाहा कि बिना खाये ही उठ कर चला जाऊं। परंतु यह तो बहुत अशिष्टता होती। अतः मन मसोस कर रह गया। एक-दो कौर बड़ी मुश्किल से निगल पाया। चाय भी एक-दो घूंट बड़ी कठिनाई से पी सका। जाने की जल्दी का बहाना करके उठना चाहा, पर उस टी.बी. के रोगी का साथ छोड़ कर उठना भी व्यावहारिक नहीं था। जैसे-तैसे उस कठिन स्थिति में से गुजर कर मित्र से विदा ली। जयपुर पहुँच कर एक्सरे करवायी तो निदान हुआ कि मुझे टी.बी. नहीं है। मैं पूर्णतया स्वस्थ हूं। बहुत अधिक खांसी के कारण गला छिल गया था, जिससे थूक और कफ के साथ खून का जरा-सा अंश आ गया था। इस निदान के बाद मेरे साथ अछूत का बर्ताव किये जाने की पीड़ा और गहरा उठी।

इस अनुभव से सहस्राब्दियों से कुचले जाते हुए अस्पृश्यों की मर्माहत पीड़ा की कल्पना ने मुझे अत्यधिक झकझोर दिया। मेरे मामले में एक भयानक संक्रामक रोग का संदेह तो था। परंतु वे तो बिल्कुल स्वस्थ और

नहा-धो कर स्वच्छ कपड़े पहने हों तो भी दुत्कारे जायं। उनके प्रति होने वाले उस अमानवीय व्यवहार और इसे पुष्ट करने वाली दूषित सामाजिक व्यवस्था का चिंतनमात्र मुझे दिनोंदिन अधिकाधिक व्यथित करने लगा।

पांच वर्षों तक भारत में रहते हुए इस विषय पर मनोमंथन चलता रहा। तदनंतर युद्ध समाप्त होने पर १९४७ में बरमा पुनः लौटा और अपने काम-धंधे में जुड़ जाने पर भी इस समस्या का चिंतन चलता ही रहा। व्यापार के सिलसिले में पहले कुछ एक वर्ष पड़ोसी दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में और इसके बाद सारे विश्व के भिन्न-भिन्न देशों में बारबार आना-जाना होता रहा। व्यापारिक जिम्मेदारियों को पूरा करते हुए विभिन्न देशों के विभिन्न समुदायों की सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन कर सकने के लिए भी कुछ समय निकालता रहा। अपने यहां की सामाजिक व्यवस्था से उसकी तुलना भी करता रहा।

जन्म पर आधारित इस चातुर्वर्णी व्यवस्था के कारण अपने-अपने पुश्तैनी धंधे में लोग निपुण होते हैं, यह कहना बेमाने लगा। अन्यान्य देशों में ऐसी जकड़नभरी वर्ण-व्यवस्था न होने पर भी संतान अपने माता-पिता के पेशे में निपुण होती ही है। पर स्वेच्छा से कोई अन्य मनपसंद पेशा अपना लेता है तो उसमें भी निपुणता प्राप्त कर ही लेता है। निपुण होने के लिए उस पर ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है कि अपने बाप के पेशे को ही अपनाये। फिर 'छिः कला' जैसे पेशे के लिए किस निपुणता की आवश्यकता है?

जन्म पर आधारित इस चातुर्वर्णी व्यवस्था के ईश्वर-निर्मित होने की दलील भी बिल्कुल बेमाने लगने लगी। यह किन्हीं निहित स्वार्थरत चतुर लोगों द्वारा ही निर्मित लगने लगी। एक अन्य दूषित सामाजिक व्यवस्था द्वारा नारी जाति पर किये गये अत्याचारों का जो सही मूल्यांकन राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्त द्वारा किया गया, वह बहुत तथ्यपरक लगा। उन्होंने कहा –

"नरकृत शास्त्रों के सब बंधन, हैं नारी ही को लेकर।
अपने लिए सभी सुविधाएं, पहले से कर बैठे नर॥"

इसमें ईश्वर क्या करता भला! स्वार्थी पुरुषों ने ऐसे ग्रंथों की रचना की जिससे कि नारी के शोषण पर धार्मिक मोहर लगा दी गयी। ठीक यही सच्चाई इस जातिवादी व्यवस्था की संरचना पर लागू होती है। यह स्पष्ट दिखने लगा कि यदि दमन और दलन की इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था में सचमुच कोई खूबी होती तो उस जगन्नियंता ने यह व्यवस्था सारे विश्व के संपूर्ण मानव-समाज पर क्यों नहीं लागू की होती? केवल भारत के एक समुदाय पर ही लागू क्यों की? अतः इस दलील का खोखलापन स्पष्ट दीखने लगा।

जैसे-जैसे इस विषय पर चिंतन-मनन गहन होता गया, उससे यह स्पष्ट से स्पष्टतर होता चला गया कि धर्म के नाम पर जिन शास्त्रों की रचना की गयी उन्हीं में इस समस्या का उद्गम समाया हुआ है। इस चिंतन से यह दुःख अवश्य हुआ कि इस बुराई के विरुद्ध समाज के अन्य सभी लोग क्यों नहीं जाग उठे? समाज का बहुत बड़ा भाग गहरी नींद में सोया रहा। आज भी सो ही रहा है। कुछ समझदार लोगों ने तो अवश्य आवाज उठायी, परंतु उसका कोई स्थाई प्रभाव नहीं पड़ा।

मेरे विद्यार्थी जीवन की कुछ एक स्मृतियां

मैंने मैट्रिक तक की पढ़ाई मांडले के खालसा स्कूल में की। हिंदी की पढ़ाई घर पर स्वाध्याय से की। जैसे कबीर, दादू, रैदास आदि संतों की कल्याणी वाणी ने मेरे मानस में धर्म का बीज बोया वैसे ही प्रथमेश गुरु नानकदेवजी और दशमेश गुरु गोविंदसिंहजी की वाणी ने उसमें सुधारस सींचा। इन संतों ने मुझे जात-पांत के, ऊंच-नीच के, छूत-अछूत के मानवकृत मिथ्या जंजालों में उलझने से बचाये रखा। इन संतों के कितने ही पद मेरे मानस को पुलकित करते थे।

जात-पांत पूछे ना कोय, हरि को भजे सो हरि का होय।

जैसे बोल मुझे बहुत प्रिय लगते थे।

इसी प्रकार –

जात न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ग्यान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥

परख तो तलवार की होती है, तलवार के धार की होती है, वह चाहे जिस म्यान से निकली हो। इसी प्रकार परख संत की होती है, संत के ज्ञान की होती है, वह चाहे जिस मां के पेट से निकला हो।

ऐसे ही दशमेश गुरु गोविंदसिंहजी की जीवनगाथा ने मुझे चुंबक की तरह अपनी ओर खैंच लिया। उन्होंने बिगड़ी हुई चातुर्वर्णी व्यवस्था के रोगी पेड़ को जड़ से उखाड़ कर एक मनुष्य जाति में परिणत करने का अनथक प्रयत्न किया।

मानुस की जात सब एक कर जानिए।

मनुष्य की जाति तो एक ही है। उसे अलग-अलग करना दोषपूर्ण है।

उस देशभक्त सद्गुरु ने ठीक ही समझा कि हमारे देश की गुलामी का एक बड़ा कारण यही रहा है कि हम इस जात-पांत के भेदभाव में बिखर गये। सारा राष्ट्र एक नहीं हो सका। अतः इस दूषण को दूर करने का उसने बीड़ा उठाया। चार वर्णों के विभाजन को समाप्त करके ऊंच-नीच के भेदभाव को दूर किया। न कोई अछूत है, न अपवित्र है। मनुष्य हैं तो सभी पवित्र हैं, सभी खालसा हैं। अपने आदेश का जीता-जागता उदाहरण पेश करते हुए उसने समाज में नीची जाति के माने जाने वाले अपने पांच शिष्यों को "पंच प्यारों" का स्थान दिया। उन्हें अमृत चखा कर अपना शिष्य बनाया और उन्हीं के हाथों स्वयं अमृत चख कर उन्हें अपना गुरु घोषित किया और उनके चरण छुए। धन्य है ऐसा गुरु जो शिष्य बना और धन्य ऐसे शिष्य जो गुरु बने। यह संदेश था सारे भारत के लिए। मनुष्य है तो सभी पवित्र हैं, सभी खालसा हैं। कोई ऊंच नहीं, कोई नीच नहीं।

मेरे मानस पर गुरु गोविंदसिंहजी की उस शिक्षा का गहरा प्रभाव पड़ा। काश, सारा देश इसे स्वीकार कर लेता!

आर्यसमाज

ऐसा ही एक और प्रभाव पड़ा आर्यसमाज के पंडित मंगलदेवजी शास्त्री का, जो कि हमारे घर के समीप बने नये आर्यसमाज में धर्माचार्य थे। उनसे जो अनेक कल्याणकारी बातें सीखने को मिलीं, उनके साथ-साथ इस एक जानकारी ने मुझे विशेष प्रभावित किया। उन्होंने बताया कि महर्षि दयानंदजी के कथनानुसार प्राचीन भारत की वर्ण-व्यवस्था व्यक्ति-व्यक्ति के गुण धर्म स्वभाव पर आधारित थी। आगे जा कर कुछ स्वार्थी लोगों ने हमारे प्राचीन धर्मग्रंथों में क्षेपक के रूप में अपनी मनमानी बातें जोड़ दीं और इस व्यवस्था को दूषित कर दिया।

एक अन्य दर्दनाक घटना

जहां एक ओर ऐसे चिंतन चलते रहे, वहां एक अन्य दर्दनाक घटना घटी।

जापानी युद्ध के पश्चात के व्यापारिक जीवन की एक अन्य घटना ने पुनः मेरे मानस को बुरी तरह झकझोरा। उन दिनों मैं व्यापार के सिलसिले में जापान गया हुआ था। बरमा में हमारा आयात-निर्यात का व्यापार अधिकांशतः जापान से होता था। अतः वहां बार-बार जाना पड़ता था और कई दिनों तक रहना भी। अतः अपनी सुविधा के लिए हमने ओसाका में एक मकान खरीद लिया था। उससे सटा हुआ मकान बरमा के ही मेरे एक व्यापारी मित्र का था। एक बार जब मैं वहां गया हुआ था, पड़ोसी मित्र ने किसी प्रसंग में अपने घर रात्रि-भोजन का आयोजन किया। बरमा के जो १०-१५ भारतीय व्यापारी उस समय ओसाका आये हुए थे वे सभी आमंत्रित थे। हम सब समय पर एकत्र हो गये। स्वरुचि भोजन आरंभ होने वाला था। इतने में एक आमंत्रित युवक आ पहुँचा। वह प्लूरोसी का रोगी था जो टी.बी. से मिलती-जुलती है पर कम खतरनाक बीमारी है। जैसे ही हमारे साथ वह टेबल की ओर बढ़ा कि अतिथियों में से एक नासमझ व्यक्ति ने उसे टोकते हुए कहा, तुझे तो प्लूरोसी का रोग है न? रोगी ने

झेंपते हुए उत्तर दिया, नहीं, अब मैं बिल्कुल ठीक हूं। परंतु उसके मुँह की हवाइयां उड़ गयीं। वह बहुत निष्प्रभ हो गया। सब उसे घूर-घूर कर देखने लगे। जैसे हम सवर्णों के बीच यह अवर्ण कहां से आ घुसा? मेजबान ने झेंप उतारते हुए कहा, हां-हां अब तो तुम ठीक हो। आओ, भोजन लो। पर मैं देख रहा था कि वह युवक बुरी तरह सकुचा रहा था। मुझे झुंझुनू की आपबीती याद आयी। मैंने एक बड़ी प्लेट में दो व्यक्तियों के लायक भोजन लिया और उस झेंपते हुए युवक से कहा कि यहां भीड़-भाड़ में कहां बैठेंगे। चलो मेरे साथ और हम दोनों ने हमारे बगल के घर में आकर, वहीं बैठ कर एक प्लेट में एक-साथ भोजन किया। इससे युवक को राहत तो मिली, परंतु उसके हृदय से निकलती पीड़ा का अनुताप मुझे सहज अनुभूत हो रहा था।

इस घटना ने फिर एक बार मेरे मानस को जोर से झकझोरा। जब किसी व्यक्ति को स्वस्थ होने पर भी किसी संक्रामक रोग का रोगी होने के संदेह के कारण अस्पृश्यता की कड़वी घूंट पीनी पड़ती है तो हमारे समाज के इतने बड़े समूह को हमने बिना किसी कारण अस्पृश्यता की दुत्कार से पीड़ित कर रखा है, इससे बड़ा सामाजिक दुष्कर्म और क्या होगा भला! इससे बड़ा सामाजिक अनर्थ और क्या होगा भला! इससे बड़ा अधर्म और क्या होगा भला! इससे बड़ा पाप और क्या होगा भला!

प्रचंड प्रतिक्रिया

और फिर परम ईश्वरवादी होते हुए भी गहरा रोष जागा उस ईश्वर के प्रति जिसने ऐसी दुर्व्यवस्था भले स्वयं नहीं बनायी पर बनाने वालों को, इसे प्रचारित करने वालों और मानने वालों को दंडित क्यों नहीं किया? ऐसा अन्याय होते वह क्यों चुपचाप देखता रहा? इन्हीं भावों से उद्वेलित होकर उन दिनों एक तूफानी कविता लिखी गयी जिसमें मेरे विद्रोह के भाव ज्वालामुखी की तरह धधक कर फूट पड़े।

वह तूफानी कविता

सन १९५१-५२ के आस-पास लिखी गयी और रंगून की हिंदी साहित्य गोष्ठी में बार-बार पढ़ी गयी उस कविता के कुछ बोल इस प्रकार हैं –

जन्मजात मिथ्या मान्यता को ललकारता हुआ मेरे मानस का कवि कहता है –

ब्राह्मण बनिये के घर जन्मे, इससे ही क्या हम हैं महान?
हम उच्च वर्ण, हम सर्वश्रेष्ठ, ऊंचा समाज में बना स्थान।

और फिर इस मान्यता को धिक्कारता हुआ कहता है –

चाहे हों अनपढ़ निपट मूर्ख, फिर भी पंडितजी कहलाएं।
चाहे हों कामी कुटिल किंतु, धर्मावतार का पद पाएं।

स्वयं को थोथे दंभ की ऊंचाइयों पर बैठा कर हमने उन दलितों की कैसी दुर्दशा की –

पुरखों से उनके पल्ले, सेवा का ही भार दिया हमने,
वे भोले मूक मनुज उनसे, क्या-क्या ना काम लिया हमने।

कितना अमानवीय शोषण किया है हमने उनका –

वे रखते हमको स्वच्छ साफ, रह स्वयं घिनौने जीवन में।
उनकी मेहनत के बल पर हम, सम्मानित होते जन-जन में।

और बदले में उनकी क्या दशा बनायी है हमने –

वे हैं अछूत अस्पृश्य नीच, उनका समाज में नहीं स्थान।
वे जन्मजात पददलित रहें, उनका कैसा मानापमान?

और फिर दूसरी ओर हमारे अपने जन्मसिद्ध अधिकारों का क्या कहना –

हम उच्च वर्ण हैं अतः, सुरक्षित है हमको सर्वाधिकार।
मंदिर देवालय धर्मस्थान, ईश्वर तक पर एकाधिकार।

इतना ही नहीं;

सब कूएं बावड़ी अपने हैं, सड़कों तक पर चलने ना दें।
यदि वश चल जाये तो उनको, हम पृथ्वी पवन न छूने दें।

मेरे भीतर का कवि अपने आप को ललकारते हुए कहता है –

मैं पूछ रहा आखिर यह सब, किस न्याय नीति के बल पर है?
हम बनें धर्म के कर्णधार, पर अनाचार में तत्पर हैं।

इतना सब कह चुकने के बाद अंतर में विद्रोह की ज्वाला धधक उठती है और भीतर का विद्रोही कवि किसी ईश्वर के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लगाता हुआ कहता है –

मैं सोचा करता कभी-कभी, क्या परमेश्वर भी मिथ्या है?
वह मूक बधिर-सा रहे देखता, यहां हो रहा क्या-क्या है!

भीतर का विद्रोह और प्रबल स्वरों में मुखरित होकर फूट पड़ा –

हम इतना अत्याचार करें, निकले उसकी आवाज नहीं।
धरती न फटे, नभ ना टूटे, गिरती हम पर क्यों गाज नहीं?

आखिर मेरे भीतर के विद्रोही कवि ने अपना फैसला सुना दिया –

वह ईश नहीं, जगदीश नहीं, वह सच्चा धर्म पुराण नहीं,
जिसके आदेशों में मानव को, है समता का स्थान नहीं।

जातपांत पर आधारित ऊंच-नीच और छुआछूत की गलत परंपरा के विरुद्ध स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद और महात्मा गांधी भी थे। इसका प्रभाव भी मेरे मन पर स्पष्ट था।

मैंने सुना कि भगवान बुद्ध भी जन्म के आधार पर इस मानवीकृत व्यवस्था को नहीं स्वीकारते थे, वे गुण और कर्म के आधार पर ही व्यक्ति का श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ होना मानते थे, मुझे यह बहुत प्रिय लगा। मुझे लगा कि बुद्ध की कम-से-कम यह एक शिक्षा तो बहुत उत्तम है। बाकियों के संबंध में मैं पूर्ववत बहुत शंकालु बना ही रहा।

पूर्वी एशिया के बुद्धानुयायी देश

उन दिनों व्यापार के सिलसिले में पूर्वी एशिया के लगभग सभी बुद्धानुयायी देशों की बार-बार यात्रा करते हुए वहां के लोगों का भगवान बुद्ध के प्रति असीम भक्तिभाव देख कर मेरी भी श्रद्धा कई गुना बढ़ी। हमारे देश के एक विलक्षण प्रतिभाशाली महापुरुष के कारण सारे विश्व में हमारी प्रतिष्ठा स्थापित हुई। यह महापुरुष विश्ववंद्य हुआ तो सारा देश गौरवान्वित हुआ। हमारा सिर ऊंचा हुआ। हमारे देश को 'विश्वगुरु' का सम्मान मिला। सभी बुद्धानुयायी देशों में मिट्टी से, पत्थर से, संगमरमर से, लकड़ी से, हाथी-दांत से, पीतल से, अष्टधातु से, सोने से और यहां तक कि पन्ने जैसे रत्नों से भगवान बुद्ध की एक-से-एक सुंदर मूर्तियां बना-बना कर वहां के लोगों द्वारा पूजी जाती देखता तो मानस गर्व से भर उठता। फिर भी बुद्ध की अतिशय अहिंसामयी शिक्षा के कारण शस्त्र त्याग कर भारत दुर्बल बना, गुलाम बना; यह एक ऐसा कांटा था जिसकी टीस और कसक मेरे देशप्रेमी हृदय को यदाकदा सालती रहती थी।

कभी-कभी मन में यह एक प्रश्न अवश्य उठता था कि उसी बुद्ध की चरम अहिंसावादी शिक्षा ने इन देशों को दुर्बल क्यों नहीं बनाया, इन्हें गुलाम क्यों नहीं बनाया? परंतु इस पर अपने मन को यह कह कर समझा लेता था कि इसका कोई अन्य कारण अवश्य रहा होगा। हमारा देश दुर्बल हुआ यह तो देश का बच्चा-बच्चा स्वीकारता है। देश के सभी समझदार नेता स्वीकारते हैं। इसमें मतभेद नहीं है।

इन्हीं दिनों इस संबंध में वीर सावरकर के सुदृढ़ विचार सामने आये। वीर सावरकर हिंदू महासभा के नेता थे। मैं बचपन से ही उनकी राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित था। उनके देश-प्रेम की प्रबल भावना ने और जहाज पर से गहरे समुद्र में कूद कर अपने आप को स्वतंत्र बना लेने के बहादुरीपूर्ण साहस ने मुझे उनका प्रबल प्रशंसक बना दिया। मैंने उन दिनों तक उनकी कोई पुस्तक नहीं पढ़ी थी। फिर भी सुना था कि बुद्ध की हानिकारक शिक्षा द्वारा सारा देश कैसे दुर्बल, दीन, परतंत्र और पराधीन होता चला गया, इसका

उन्होंने ऐतिहासिक प्रमाणों सहित विस्तृत विवरण दिया है। बुद्ध की शिक्षा में कहीं कोई विशिष्ट दोष अवश्य है, मेरी इस पूर्व-निश्चित धारणा को इस सूचना ने पुष्ट किया। बुद्ध की परम अहिंसावादी शिक्षा ने और देशों को हानि पहुँचायी या न पहुँचायी, परंतु हमारे देश को तो अवश्य पहुँचायी।

कामभोग में लिप्त शासकों का एकजुट होकर विदेशी शक्ति का सामना न कर पाना; जाति-पांति के, ऊंच-नीच, छुआछूत के कारण विदेशी आक्रमण का सामना करने में सारे राष्ट्र का एकजुट न हो पाना – ये तथ्य भी मेरे सामने थे। फिर भी बुद्ध की शिक्षा के कारण ही हमारा देश दुर्बल हुआ, गुलाम हुआ, मानस में अत्यंत गहराई से पैठा हुआ यह विश्वास उन दिनों दूर न हो सका।

भगवद्गीता

मेरे आराध्य श्रीकृष्ण की शिक्षा होने के कारण गीता के प्रति मेरी गहन श्रद्धा थी। विशेषतः दूसरे अध्याय में जहां स्थितप्रज्ञ के गुण बताये गये हैं और बारहवें अध्याय में जहां भगवान के प्रिय भक्त के गुण वर्णित हैं। मैं रंगून में रहते हुए जब कभी गीता पर प्रवचन देता तब इन्हीं दो विषयों की व्याख्या करता था, क्योंकि यही मुझे प्रिय थे।

जबसे मैंने सुना कि बुद्ध की अहिंसावादी शिक्षा द्वारा देश को दुर्बल होता देख कर ही पिछले २,००० वर्षों से देश में पुरातन गीता के प्रचार को प्रबल किया गया ताकि दुश्मन को सामने देख कर हथियार डालने के बजाय हथियार उठा कर उससे लड़ने की प्रवृत्ति जागे, इस कारण उन दिनों मुझे गीता का यह पक्ष भी प्रिय लगता था।

यह जान कर कि बुद्ध की हथियार डाल देने वाली शिक्षा के मुकाबले गीता के हथियार उठाने की शिक्षा देश में अधिक दिनों तक प्रचारित होती रही, फिर भी देश गुमराह रहा और बुद्ध की शिक्षा के प्रभाव में आकर आत्मरक्षा का बल न जगा सका। मैंने इसका अर्थ यह निकाला कि बुद्ध की शिक्षा सचमुच अत्यंत प्रभावशाली रही होगी। इसी कारण इतनी सदियों तक भी देश के लिए घातक बनी रही। परंतु कभी यह जानने की कोशिश नहीं की कि बुद्ध की वह परम अहिंसावादी शिक्षा क्या थी और उसने कैसे सदियों तक देश को भरमाये रखा।

अच्छा हुआ, आगे जाकर सारी वस्तुस्थिति पूर्णतया स्पष्ट हुई।

एक आकस्मिक घटना

सन १९५४ की बुद्धपूर्णिमा के दिन रंगून में नये बने कबाये पगोडा (विश्व शांति स्तूप) के विशाल परिसर में प्रधानमंत्री ऊ नू की स्वतंत्र बरमी सरकार के संरक्षण में छट्ठ संगायन का बृहत ऐतिहासिक आयोजन आरंभ हुआ। ऊपर से कृत्रिम पर्वत के आकार की एक विशाल इमारत और उसके भीतर छह स्थूल स्तंभों पर निर्मित धर्मकक्ष, जिसमें कतारबद्ध ऊंचाई पर २,५०० भिक्षुओं के बैठने का और नीचे विस्तृत फर्श पर ५-७ हजार गृहस्थों के बैठने का स्थान। यहीं वह आयोजन आरंभ हुआ जो कि आगामी दो वर्षों तक लगातार चलता रहा।

उस समय मुझे जरा-भी ज्ञान नहीं था कि संगायन क्या होता है? गायन का अर्थ तो स्पष्ट था पर यह संगायन क्या हुआ? यही समझा कि भिक्षु लोग मिल कर यहां कोई पाठ करेंगे। जैसे मृत्यु के ग्रह को टालने के लिए अपने यहां महामृत्युंजय का पाठ किया जाता है। अन्य बुरे ग्रहों को शांत करने के लिए रुद्र का पाठ किया जाता है। अथवा कोई मनोकामना पूरी करने के लिए श्रीमद्भागवतपुराण का पाठ किया जाता है। स्वयं नहीं कर पाते तो दक्षिणा देकर पंडित-पुरोहितों द्वारा इस पाठ का अनुष्ठान करवाते हैं। वैसे ही मुझे लगा कि प्रधानमंत्री ऊ नू भी अपनी दीर्घायु के लिए, अपने सुखद स्वास्थ्य के लिए अथवा अपनी सरकार के संकटमोचन के लिए इन बौद्ध भिक्षुओं द्वारा ऐसा कोई स्तवन करवा रहा है। पर अपने यहां तो दो-चार अथवा बहुत हुआ तो ८-१० ब्राह्मण पाठ करते हैं और दस-पंद्रह दिनों में पारायण पूरा कर लेते हैं। यहां इसी स्तवन के लिए २,५०० भिक्षु एकत्र किये गये हैं। वे भी केवल बरमा के ही नहीं हैं, अड़ोस-पड़ोस के देशों से भी आये हैं। ये भिक्षु पूरे दो वर्षों तक पाठ करते रहेंगे, यह सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ। और फिर यह भी नहीं समझ पाया कि इसे छठा संगायन क्यों कहते हैं? इसके पूर्व संगायन कब हुए, क्यों हुए, कहां हुए? क्या उनमें इतने ही भिक्षु एकत्र हुए थे? क्या वे संगायन भी दो

वर्ष तक चले थे? जब यह सुना कि पहाड़नुमा इमारत के भीतर जो गुफानुमा हॉल बना है वह प्रथम संगायन की सप्तपर्णी गुफा की प्रतिकृति है तो उसके बारे में भी जिज्ञासा जागी।

ऐसी अवस्था में जबकि मैं इस बृहत आयोजन के बारे में कुछ भी नहीं जानता था, तब आयोजन प्रारंभ होने के कुछ दिनों पहले मुझे सूचना मिली कि इसकी एक महत्त्वपूर्ण प्रबंध समिति में मुझे एक सदस्य मनोनीत किया गया है। मैं आश्चर्यचकित हुआ कि जिस महान आयोजन के क, ख, ग की भी मुझे जानकारी नहीं, उसकी किसी समिति में सरकार ने मुझे क्यों मनोनीत किया? मैं इसमें क्या योगदान दे पाऊंगा? यह तो बौद्धों का धार्मिक आयोजन है और न मैं बौद्ध हूं और न ही बौद्ध धर्म का जानकार। बल्कि बौद्ध धर्म के बारे में जो पढ़ा या सुना है उसे लेकर इसका प्रशंसक भी नहीं हूं। फिर मुझे इसमें क्यों लिया गया? थोड़ा सशंकित भी हुआ कि कहीं इन बौद्धों की संगत से मैं भी बौद्ध धर्म न अपना लूं!

जो भी हो, जब इस समिति की पहली बैठक बुलायी गयी तब मैं ये सारे प्रश्न मन में लेकर उसमें उपस्थित हुआ। देखा, उसकी एक प्रमुख कार्यकर्त्री ऊ चो ञूं की धर्मपत्नी है और दूसरी ऊ छान ठुन की। ऊ चो ञूं बरमी सरकार का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण केंद्रीय मंत्री था जो आगे जाकर उपप्रधानमंत्री बना। ऊ छान ठुन देश का एटार्नी-जनरल था जो आगे जाकर सुप्रीम कोर्ट का जज बना। वह इस संगायन की व्यवस्था करने वाली बुद्ध शासन समिति का प्रधान सचिव था और मेरा मित्र भी। शायद इसी कारण उसने मुझे उस समिति का सदस्य नियुक्त किया। मेरे वहां पहुँचते ही इन दोनों महिलाओं ने मुस्करा कर मुझे समीप बैठाया और मेरे कौतूहल को दूर करते हुए बताया कि मुझे संगायन की भोजन समिति का सदस्य नियुक्त किया गया है। इस समिति पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी का भार है, पर मेरे हिस्से की जिम्मेदारी बहुत बड़ी नहीं होगी। मुझे केवल निरामिषभोजी भिक्षुओं और गृहस्थों के भोजन का ही प्रबंध करना है। इनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई, क्योंकि यह कार्य मेरी रुचि का था। इस संगायन के बारे में मेरी जानकारी और रुचि हो या न हो, पर निरामिष भोजनदान में तो रुचि थी ही। जिम्मेदारी भी बहुत भारी नहीं थी।

भारत से आये हुए केवल दो-चार भिक्षु ही निरामिषभोजी थे और वे भी वर्ष में दो-तीन महीने से अधिक नहीं रहते थे। उनकी सेवा कर मन प्रसन्न ही होता था। निरामिषभोजी गृहस्थ तो शायद ही कभी कोई देखने में आया हो। हां, संगायन के अंत में अपने समाज की ओर से एक दिन के लिए निःशुल्क भारतीय शाकाहारी भोजन का प्रबंध किया गया। इसके भोजनालय के लिए एक विशाल पंडाल बनाया गया जिसमें ५-१० हजार बुद्धभक्त गृहस्थों को भोजन खिला कर मन बहुत संतुष्ट-प्रसन्न हुआ।

इस प्रकार आकस्मिक और अप्रत्याशित रूप से मैं इस ऐतिहासिक छट्ठ संगायन के विशाल प्रबंधन में भाग्यशाली भागीदार बन गया। इसका बहुत बड़ा लाभ तो यह हुआ कि मुझे बौद्ध परंपरा की बहुत-सी अज्ञात बातों की जानकारी हुई। दूसरे यह जाना कि जिसे मैं अपनी वैदिक परंपरा की एक विकृत शाखा मात्र मानते आ रहा था, उसका अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व है। मुझे यह भी जानने को मिला कि यह श्रमण परंपरा की एक शाखा है जो कि बहुत पुरानी है। यह जान कर बहुत आश्चर्य हुआ कि गौतम के पहले भी अनेक बुद्ध हुए और चार असंख्येय्य और एक लाख कल्पों के पहले दीपंकर नाम के एक सम्यक संबुद्ध हुए थे और यह कि इस कल्प में गौतम चौथे सम्यक संबुद्ध थे। उनके पहले तीन सम्यक संबुद्ध हो चुके थे और आगे इसी कल्प में पांचवे होने वाले हैं।

बुद्ध बनने के लिए किसी व्यक्ति को अनेक पारमियां पूरी करनी पड़ती हैं, जिसके लिए अनेक कल्पों में अनेक जन्म लेने पड़ते हैं। पारमी उन सद्गुणों को कहते हैं जिनके पूर्ण होने से ही व्यक्ति बुद्ध बनता है। अनेक जन्मों में जब वह अपनी पारमी पूरी कर रहा हो तब वह बोधिसत्त्व कहलाता है। ये सारी बातें मेरे लिए बिल्कुल नयी थीं। पारमी, कल्प, असंख्येय्य, बोधिसत्त्व जैसे अनेक शब्द मेरे सामने आये जो कि मेरे लिए बिल्कुल नये थे। हमारी वैदिक परंपरा में मैंने ये शब्द कभी नहीं सुने थे।

शासन शब्द का नया अर्थ भी सामने आया। हम तो राज्य की हुकूमत को ही शासन कहते हैं। परंतु इस परंपरा में शासन शिक्षा को कहते हैं। बुद्ध शासन यानी बुद्ध की शिक्षा। संगायन शब्द का अर्थ भी समझ में आया और वह यह कि संगायन में एक-साथ मिल कर बुद्धवाणी का पाठ किया

जाता है। परंतु यह जान कर आश्चर्य हुआ कि यह पाठ किसी लौकिक कामना की पूर्ति के लिए नहीं किया जाता। यह कोई कर्मकांडी पाठ नहीं है। इसका उद्देश्य है मूल बुद्धवाणी की प्रामाणिकता को जांच कर उसकी शुद्धता को कायम रखना।

मेरे लिए यह बिल्कुल नयी सूचना थी कि भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद तीन महीने बीतते-बीतते उनके ५०० ऐसे प्रमुख भिक्षु शिष्य एकत्र हुए जो सत्यसाक्षी थे, जिन्होंने भगवान बुद्ध की शिक्षा उन्हीं के मुँह से सुनी थी और उनमें से अनेकों को उसके कई भाग कंठस्थ थे। एक ऐसा भी था जिसने सारी-की-सारी वाणी कंठस्थ कर रखी थी। वे सब-के-सब अरहंत थे। अरहंत उन्हें कहते हैं जो अपने मनोविकारों का निर्मूलन करके जन्म-मरण के भव-संसरण से विमुक्त हो चुके हों। वे ५०० अरहंत राजगीर की सप्तपर्णी नामक गुफा में एकत्र हुए थे। यही प्रथम संगायन कहलाया। संपूर्ण बुद्धवाणी का मिलजुल कर पाठ किया गया और संकलन-संपादन करके उसकी प्रामाणिकता की घोषणा की गयी।

उन्हें यह डर था कि आगे चल कर कुछ एक स्वार्थी अथवा अज्ञानी लोग इस मूल वाणी में अपनी ओर से कुछ जोड़-तोड़ कर इसकी शुद्धता नष्ट कर देंगे। उनकी आशंका सही सिद्ध हुई। एक सौ वर्ष भी नहीं बीत पाये थे कि कुछ भिक्षु भगवान के बनाये हुए कड़े नियमों में अपनी सुविधानुसार फेर-बदल करने लगे। उनका तर्क था कि समय की मांग के अनुसार भिक्षु पर लगाये गये नियमों में कुछ छूट देनी आवश्यक है। परंतु जो पुरातन परंपरावादी भिक्षु थे उन्हें बुद्धवाणी में जरा-भी रद्दोबदल करना कतई स्वीकार्य नहीं था। वे इसे पूर्ववत शुद्ध रखने के पक्ष में थे। अतः १०० वर्ष बीतने पर उन्होंने दूसरा संगायन आयोजित किया, जिसमें बुद्धवाणी की प्रामाणिकता को पुनः जांच कर उसे मूल रूप में कायम रखा गया। जो बदलाव चाहते थे, वे अपने आप अलग हो गये। यों पीढ़ी-दर-पीढ़ी इन पुरातनपंथी भिक्षुओं द्वारा शुद्ध बुद्धवाणी को कंठस्थ कर रखने की परंपरा चलती रही। लगभग अढाई सौ वर्ष बाद सम्राट अशोक के समय तीसरे संगायन का आयोजन किया गया, क्योंकि उस समय तक ऐसे छोटे-मोटे अनेक दल प्रकट हो गये थे जो कि मूल वाणी में कहीं-न-कहीं, कोई-न-कोई

परिवर्तन किया चाहते थे। परंतु जो कट्टर पुरातनपंथी थे वे इसे अपने मूल रूप में शुद्ध रखना अपना परम कर्तव्य समझते थे। इसलिए इस तीसरे संगायन का आयोजन हुआ। इसके आयोजक थेरवादी, यानी स्थविरवादी, कहलाये। स्थविर बूढ़े भिक्षु को कहते हैं। ये थेरवादी भिक्षु उसी पुरातन परंपरा के थे जो बुद्धवाणी में रंचमात्र भी परिवर्तन न किये जाने के पक्षधर थे।

मुझे यह भी जानकारी मिली कि इस तीसरे संगायन के समापन पर सम्राट अशोक और उसके गुरु भिक्षु मोग्गलिपुत्त तिस्स ने पूरी-की-पूरी विशुद्ध बुद्धवाणी और उसकी व्यावहारिक विपश्यना साधना आसपास के अनेक देशों में भेजी। बरमा में इसके पहले भी बुद्धवाणी आंशिक रूप में आ चुकी थी। परंतु इस बार भारत से भेजे गये दो अरहंत भिक्षुओं द्वारा संपूर्ण वाणी अविकल रूप में बरमा लायी गयी। इसी प्रकार यह श्रीलंका, थाईलैंड इत्यादि देशों में भी पहुँचायी गयी। भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के ४०० वर्ष बीतते-बीतते लंका के भिक्षुओं ने यह निर्णय किया कि इतना विशाल साहित्य अनेकों के लिए कंठस्थ याद रखना कठिन है। कोई-कोई भले याद रख सके। अतः उन्होंने चौथे संगायन का आयोजन किया और मूल बुद्धवाणी की प्रामाणिकता पुनः स्थापित कर उसे ताड़पत्रों पर लिखवा दिया जिससे कि उसमें परिवर्तन किये जाने की जरा-भी आशंका न रहे। इस प्रकार सदियां बीतती गयीं। वाणी शुद्ध रूप में ताड़पत्रों पर कायम रखी गयी। फिर भी कंठस्थ करने वाले कंठस्थ भी करते रहे। २०० वर्ष पहले मांडले के बरमी राजा मिं डों मिं के राज्यकाल में पांचवें संगायन का आयोजन हुआ, जिसमें सारी बुद्धवाणी की प्रामाणिकता को पुनः जांच कर **उसे संगमरमर के पट्टों पर खुदवा दिया गया**, ताकि यह शुद्ध रूप में चिरस्थायी रह सके। इसके बाद अब यह छठा संगायन आयोजित हो रहा है जिसमें इस मूल वाणी के शुद्ध प्रमाणित रूप को पुनः जांच कर **पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जायगा।**

मुझे बताया गया कि इसमें छह देशों के प्रमुख भिक्षु भाग ले रहे हैं। बरमा, थाईलैंड, श्रीलंका, कंबोडिया और लाओस के प्रमुख भिक्षु उनके यहां जो मूल बुद्धवाणी प्रचलित और सुरक्षित है उसे लेकर आये हैं। भारत के

भिक्षुओं के पास मूल वाणी है नहीं, अतः वे दर्शक के रूप में सम्मिलित हुए हैं। इन पांचों देशों की अपनी अलग-अलग लिपि है और सब की भाषा पालि होते हुए भी सब के अपने अलग-अलग उच्चारण हैं। अतः इस विशाल साहित्य के एक-एक शब्द को परस्पर मिलान कर और भलीभांति जांच-पड़ताल कर प्रमाणित घोषित करने में समय लगना स्वाभाविक है। मैं देखता कि ये भिक्षु कभी-कभी रात देर तक किसी-किसी शब्द को लेकर बहस किया करते थे। यद्यपि मैं उनके इस काम के विवरण को नहीं समझ पा रहा था फिर भी इतना तो जान ही गया कि वे कोई बहुत महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक काम कर रहे हैं। आगे जाकर यह जान कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि इन पांच भिन्न-भिन्न देशों में सदियों से सुरक्षित बुद्धवाणी यहां लायी गयी और उसे परस्पर मिलान करके जांचा गया तो अंतर बहुत थोड़ा, यानी नगण्य, पाया गया। वह अंतर उच्चारण अथवा लेखनी के स्खलन अथवा असावधानी से ही हुआ। लेकिन कोई भी अंतर ऐसा नहीं था जो कि भगवान की शिक्षा के अभिप्राय को बदल दे।

तिपिटक

उन्हीं दिनों अथवा उन दिनों के आसपास एक और नया शब्द मेरे सामने आया – 'तिपिटक'। हमारी वैदिक ब्राह्मणी परंपरा में इस शब्द का प्रयोग कहीं देखने-सुनने में नहीं आया था। भारत की पुरातन श्रमण परंपरा की बुद्धानुयायी शाखा में ही इसका प्रयोग होता है। उन दिनों किसी ने मुझे बताया कि पालि भाषा में पिटक का अर्थ होता था पिटारी या टोकरी। इसमें वे ताड़पत्र संभाल कर रखे जाते थे जिन पर कि बुद्धवाणी लिखी रहती थी। भगवान बुद्ध की समग्र वाणी को तीन भागों में बांटा गया था। एक को कहा गया सुत्त। इसमें जनसाधारण को दिये गये सामान्य उपदेश संगृहीत थे। जिस टोकरी में इस साहित्य के ताड़पत्र रखे जाते थे, वह 'सुत्तपिटक' कहलायी। दूसरी टोकरी में उन उपदेशों का संग्रह था जो भिक्षु-भिक्षुणियों को दिये गये थे, यह 'विनयपिटक' कहलायी। तीसरी में उन उपदेशों का संग्रह था जिसमें शरीर और चित्त के पारस्परिक संबंधों को लेकर कर्म, कर्मबंधन, कर्मों का फलविपाक तथा कर्मबंधन से नितांत विमुक्त हो सकने

का अत्यंत सूक्ष्मतापूर्ण वैज्ञानिक विवेचन है। इसे 'अभिधम्मपिटक' कहा गया। इन तीनों को मिला कर 'तिपिटक' कहा गया। यह तो बहुत समय पश्चात मालूम हुआ कि पिटक शब्द का यह अर्थ गलत है। भगवान बुद्ध के जीवनकाल में जबकि इस शब्द का प्रयोग आरंभ हुआ था उन दिनों भगवान बुद्ध की वाणी ताड़पत्रों पर लिखी ही नहीं गयी थी। कंठस्थ याद रखने की परंपरा थी। ताड़पत्रों पर पहले पहल भगवान बुद्ध के ४०० वर्ष के बाद चौथे संगायन के समय लिखी गयी थी। अतः ताड़पत्र पर लिखी बुद्धवाणी को टोकरियों में छांट कर रखने की कल्पना गलत है। आगे चल कर जब इसके अनुसंधानकार्य में जुटा तो स्पष्ट हुआ कि 'पिटक' टोकरी को नहीं, उस साहित्य या वाङ्मय को कहते थे जिसमें धर्मवाणी संगृहीत हो। अतः सुत्त, विनय और अभिधम्म – ये तीन उपदेश जिस साहित्य में संगृहीत हैं वे पिटक कहलाये।

भगवान बुद्ध के बाद ४०० वर्ष तक तो सारा धर्म साहित्य कंठस्थ रखा ही गया था। इसके पश्चात ताड़-पत्रों पर लिखे जाने पर भी कई भिक्षुओं ने इसे एक परम पुण्य कार्य समझते हुए कंठस्थ रखने की परंपरा कायम रखी। जो भिक्षु सुत्तपिटक को कंठस्थ रखते थे वे 'सुत्तधर', जो विनय को कंठस्थ रखते थे वे 'विनयधर' और जो अभिधम्म को कंठस्थ रखते थे वे 'अभिधम्मधर' कहलाते थे। जो भिक्षु इन तीनों को कंठस्थ रखते थे वे 'तिपिटकधर' कहलाते थे। ब्रह्मदेश में जिस-जिस बरमी नरेश के राज्यकाल में ऐसे स्मृति-बहुल भिक्षु होते थे, वे राज्य की ओर से सम्मानित किये जाते थे। जो तिपिटकधर होते उनका विशिष्ट राजसम्मान होता था। बरमी राजवंश के समाप्त होने पर अंग्रेजी शासन में राजसम्मान की यह परंपरा बंद हो गयी। परंतु जनता की ओर से ऐसे भिक्षु सम्मानित होते रहे। ब्रिटिश राज्यकाल में सुत्तधर, विनयधर और अभिधम्मधर तो होते रहे, पर तिपिटकधर की परंपरा लुप्त हो गयी। आजादी के बाद बरमा के प्रथम राष्ट्राध्यक्ष सोब्वाजी साउ श्वे थाई ने किसी एक धर्मसभा में दुःख प्रकट करते हुए कहा कि बरमी राजाओं के राज्य में कोई-न-कोई तिपिटकधर अवश्य होता था, पर अब स्वतंत्र बरमी राज्य में कोई भी भिक्षु तिपिटकधर नहीं है। यह कहते हुए उसकी आंखें भर आयीं। उस सभा में उपस्थित एक

भिक्षु मिं गुं सयाडो भदंत विचित्तसाराभिवंस ने उस समय यह दृढ़ निश्चय किया कि वे इस परंपरा को पुनः स्थापित करेंगे और परिश्रम करके स्वयं तिपिटकधर बनेंगे। उन्होंने अपना यह शिवसंकल्प पूरा किया। वे तिपिटकधर बने। जिन दो प्रधान भिक्षुओं ने इस छट्ठ संगायन के संचालन में प्रमुख भाग लिया उनमें से एक भदंत विचित्तसाराभिवंस थे और दूसरे थे भदंत महासि सयाडो जो कि उन दिनों के प्रकांड पालि पंडितों में अग्रणी माने जाते थे और जो विपश्यना विद्या के विश्वविश्रुत आचार्य भी थे।

उस समय भले मैं इस संगायन के महत्त्व को पूरी तरह नहीं समझ पाया, लेकिन आगे जाकर जब बुद्ध की शिक्षा का समीक्षात्मक अध्ययन करने बैठा तब यह जान कर मन आश्वस्त हुआ कि जो पढ़ रहा हूं वह वस्तुतः भगवान की अपनी शुद्ध वाणी ही है। तब इस स्थविरवादी परंपरा के वंशानुगत भिक्षुओं के प्रति मन कृतज्ञता से भर उठा। बीच-बीच में भिक्षुओं के कितने दल जो इस मूल वाणी में इस बहाने या उस बहाने से कुछ-न-कुछ परिवर्तन किया चाहते थे, वे निराश होकर इसे छोड़ कर जाते रहे और नये-नये संप्रदाय स्थापित करते रहे। परंतु इन दृढ़चित्त पुरातनवादी भिक्षुओं ने किसी से कोई समझौता नहीं किया। विपक्षियों की बढ़ती संख्या देख कर भी विचलित नहीं हुए। वाणी की मौलिक शुद्धता में रंचमात्र भी परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं हुए। इन पांचों स्थविरवादी देशों के भिक्षु बुद्धवाणी में जरा-भी जोड़-तोड़ करना महापाप मानते हैं। इसी से यह अब तक शुद्ध रूप में कायम रह सकी।

बुद्ध शासन

इस संगायन में यत्किंचित सेवा देते हुए जिन लोगों से संपर्क हुआ उनसे एक और नयी बात मालूम हुई कि भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात उनकी शिक्षा के पहले २,५०० वर्षों को प्रथम बुद्ध शासन कहा जाता है। अब ये २,५०० वर्ष पूरे हो रहे हैं इसीलिए २,५०० भिक्षुओं को एकत्र करके इस संगायन का आयोजन किया गया है। यह आयोजन १९५४ की बुद्धपूर्णिमा को आरंभ हुआ। १९५५ की बुद्धपूर्णिमा को प्रथम बुद्धशासन का अंतिम वर्ष पूरा हुआ और उसी बुद्धपूर्णिमा से दूसरे २,५०० वर्ष के द्वितीय बुद्धशासन का प्रथम वर्ष आरंभ हुआ। अर्थात, यह छट्ठ संगायन प्रथम बुद्ध शासन के अंतिम वर्ष और द्वितीय बुद्ध शासन के प्रथम वर्ष की द्विवार्षिक अवधि में पूरा किया गया। आगे जाकर मुझे एक और नयी सूचना यह भी मिली कि प्रथम बुद्ध शासन के पहले ५०० वर्ष बड़े महत्त्वपूर्ण थे क्योंकि उस समय उनकी वाणी के साथ-साथ उनकी प्रयोगात्मक शिक्षा भी शुद्ध रूप में कायम रही। इसे विपश्यना कहते हैं। उसके बाद शनैः शनैः वह क्षीण होते हुए भारत से बिल्कुल विलुप्त हो गयी। बाहर के कुछ देशों में केवल वाणी कायम रही। परंतु विपश्यना विद्या केवल बरमा में बहुत थोड़े से लोगों द्वारा प्रथम शासन के पूरे २,५०० वर्षों तक कायम रखी गयी। यह मान्यता है कि द्वितीय बुद्ध शासन के आरंभ होने पर यह विपश्यना विद्या फिर सबल होकर जागेगी और विश्वभर में प्रसारित होगी।

एक और संयोग की बात यह हुई कि १९५५ में, यानी प्रथम शासन के अंतिम वर्ष में, मैं माइग्रेन के सिर-दर्द से बहुत दुःखी हुआ और विशेषकर इस दर्द को दूर करने के लिए जो अफीम की सूइयां दी जाती थीं उनसे अत्यंत पीड़ित हुआ। तब डॉक्टरों की सलाह से मैं सारे विश्व के बड़े-बड़े प्रसिद्ध देशों के प्रसिद्ध डॉक्टरों द्वारा चिकित्सा करवा कर इस रोग से अथवा कम-से-कम अफीम की सूई से छुटकारा पाने के लिए विश्व भ्रमण

करता रहा। १९५५ के मार्च महीने में मैं इस प्रयास में नितांत विफल और निराश होकर घर लौटा। १९५५ की बुद्धपूर्णिमा के थोड़े दिनों पहले मेरे मित्र ऊ छां ठुन ने मुझे सुझाव दिया कि मेरा यह असाध्य रोग साइकोसोमेटिक (psychosomatic) है यानी मन से संबंधित है। भगवान बुद्ध की साधना का दस दिन अभ्यास करने से मन में समता और शांति आयगी। इससे यह रोग अपने आप निकल जायगा। अतः मैं दस दिन के शिविर में सम्मिलित होने के लिए इस विद्या के प्रसिद्ध आचार्य सयाजी ऊ बा खिन से मिलूं। मेरा मन हिचकिचाहट से भर गया। मुझे पहले ही डर था कि कहीं थोड़ी-सी सेवा के लिए सम्मिलित होने पर इन बौद्धों की संगत से बौद्ध न बन जाऊं। और अब मुझे यह सुझाव दिया जा रहा है कि मैं दस दिन तक बुद्ध की व्यावहारिक शिक्षा का अभ्यास करूं। यह तो बौद्ध धर्म है, यह शंका मन को कचोट रही थी। लेकिन मेरे मित्र ऊ छां ठुन के आग्रह से मैं सयाजी ऊ बा खिन से उनके घर पर मिला, उनसे बात-चीत की, और उसके बाद बुद्धपूर्णिमा के आसपास जब द्वितीय शासन का प्रथम वर्ष आरंभ हुआ तब उनके ध्यानकेंद्र पर उनसे दुबारा मिलने गया। उनकी बातों से मुझे यह आश्वासन मिला कि वे इस साधना में केवल शील और उसका पालन करने के लिए चित्त को एकाग्र करने वाली समाधि और चित्त को निर्मल करने वाली प्रज्ञा ही सिखाते हैं। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं सिखाते। तब मेरा मन आश्वस्त हुआ क्योंकि इसमें तो कोई दोष नहीं नजर आता। बुद्ध की शिक्षा में जो अन्य दोष हैं, उन्हें अलग रख कर क्यों न मैं केवल शील, समाधि और प्रज्ञा के अभ्यास के लिए दस दिन इस विद्या को समर्पित करूं। अगला शिविर पहली सितंबर को लगने वाला था। अतः तब तक के लिए प्रतीक्षा करता रहा।

मेरा भाग्य जागा!

एक सितंबर, १९५५, मेरे जीवन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण दिवस। माइग्रेन के सिरदर्द का असाध्य और असह्य रोग, जो मेरे सिर पर अभिशाप बन कर चढ़ा हुआ था, वही अब मेरे लिए वरदान बन गया। मैं गुरुदेव परम पूज्य सयाजी ऊ बा खिन के विपश्यना ध्यान शिविर में दस दिन के लिए सम्मिलित हुआ। शिविर में सम्मिलित होने के पूर्व की मेरी झिझक, इस झिझक से पूर्णतया मुक्त न होने पर भी उसमें सम्मिलित होना और इस शिविर द्वारा आश्चर्यजनक रूप से लाभान्वित होना – अब यह इतिहास का एक बहुचर्चित पृष्ठ बन गया है।

मूल झिझक तो इसी बात की थी कि यह बौद्ध धर्म की साधना है। इससे प्रभावित होकर कहीं मैं अपना जन्मजात हिंदू धर्म तो नहीं छोड़ दूंगा? कहीं मैं बौद्ध तो नहीं बन जाऊंगा? यदि ऐसा हुआ तो घोर अनिष्ट हो जायगा। मैं धर्मभ्रष्ट हो जाऊंगा। मेरा घोर पतन हो जायगा। बुद्ध के प्रति असीम श्रद्धा होते हुए भी बौद्धधर्म के प्रति अश्रद्धा ही नहीं बल्कि क्षुद्र भाव भी था। इस पर भी शिविर में सम्मिलित हुआ, क्योंकि गुरुदेव ने विश्वास दिलाया कि विपश्यना विद्या में शील, समाधि और प्रज्ञा के अतिरिक्त और कुछ नहीं सिखाया जायगा। इन तीनों के प्रति मेरे जैसे किसी हिंदू को ही नहीं बल्कि किसी भी धार्मिक परंपरा के व्यक्ति को भी क्या ऐतराज होता?

शील-सदाचार का जीवन जीना, समाधि द्वारा मन को वश में करना, प्रज्ञा जगा कर चित्त को जहां तक हो सके, विकारविहीन बना लेना – इन तीनों शिक्षाओं का कोई भी समझदार व्यक्ति विरोध कर ही नहीं सकता। और मुझे तो क्रोध और अहंकार जैसे मनोविकारों से छुटकारा पाना था, जिनके कारण तनावभरा जीवन जीते हुए मैं माईग्रेन का रोगी हो गया था। विकार दूर होंगे तो तनाव दूर होगा और तनाव दूर होगा तो माईग्रेन दूर होगी – यह सच्चाई मेरे लिए बहुत स्पष्ट हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त जिस परिवार में जन्मा और जिस वातावरण में पला, उसमें दुराचरण से

विरत रहना और सदाचरण में निरत रहना तथा अपने चित्त को विकारों से विमुक्त रखना – जीवन में यही आदर्श उतारने का महत्त्व सिखाया गया था। अतः जब गुरुदेव ने बताया कि भगवान बुद्ध ने यही सिखाया और विपश्यना में भी यही सिखाया जायगा, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं सिखाया जायगा, तब यह सुन कर मैं आश्वस्त हुआ था। फिर भी मन के एक कोने में बहुत कुछ झिझक थी ही।

बुद्ध की शिक्षा के बारे में कुछ ऐसी बातें सुन रखी थीं जिनका अनुसरण करना उचित नहीं समझता था। अतः मन-ही-मन यह निर्णय किया कि शिविर में मुझे केवल शील, समाधि और प्रज्ञा का ही अभ्यास करना है। इन तीनों के अतिरिक्त मुझे अन्य कुछ भी स्वीकार नहीं करना है। इस विद्या को आजमा कर देखने के लिए शिविर में सम्मिलित हुआ हूं।

इसे तो मैं समझ ही रहा था कि बुद्धवाणी में अनेक अच्छी शिक्षाएं विद्यमान हैं, तभी यह विश्व के इतने देशों में और इतनी बड़ी संख्या में लोगों द्वारा मान्य हुई है, पूज्य हुई है। परंतु इसमें जो कुछ अच्छा है, वह हमारे वैदिक ग्रंथों से ही लिया गया है। अतः इसमें जो भी हानिकारक मिलावटें हुई हैं, वे मेरे लिए सर्वथा त्याज्य रहेंगी। इसका पूरा ध्यान रखूंगा।

शिविर के दस दिन पूरे होते-होते मैंने देखा कि मेरे गुरुदेव के कथनानुसार शील, समाधि और प्रज्ञा के अतिरिक्त वहां और कुछ नहीं सिखाया गया। इस विद्या के आशुफलदायिनी होने के दावे को सत्य होते देखा। दस दिन के अभ्यास से ही मन के विकार निकलने आरंभ हुए। इससे तनाव दूर होना आरंभ हुआ और फलस्वरूप माइग्रेन का भयंकर रोग दूर हुआ जो कि मानसिक तनाव के परिणामस्वरूप ही मुझे दुःखी बनाये रखता था। माइग्रेन के लिए ली जाने वाली अफीम की दुःखदायी सुई से भी सदा के लिए छुटकारा मिला। नींद के लिए बहुधा ली जाने वाली नशीली दवाओं से भी सदा के लिए मुक्ति मिली। जिन विकारों के जागने से मन व्याकुलता से भर जाया करता था, अब विपश्यना के दैनिक अभ्यास के कारण वे क्षीण होने लगे। सबसे बड़ी जानकारी यह हुई कि इस विद्या में मुझे कोई दोष नजर नहीं आया। सर्वथा निर्दोष ही निर्दोष। कोई हानि नजर नहीं आयी। सर्वथा लाभ ही लाभ।

पहले ही शिविर में मुझे विपश्यना इतनी शुद्ध लगी कि जहां तक साधना का प्रश्न है मुझे किसी दूसरी ओर देखने तक की आवश्यकता नहीं रही। मेरी आध्यात्मिक खोज का पूर्ण समाधान हो गया। मैं इस विद्या में पकने के लिए सुबह-शाम नित्य नियमित एक-एक घंटे ध्यान करता रहा और साथ-साथ साल में कम-से-कम एक बार दस दिन का शिविर लेता रहा। कभी एक महीने का लंबा शिविर भी लिया, जिससे कि यह विद्या स्वानुभूति द्वारा गहराई से समझ में आने लगी। यह नितांत न्यायसंगत और धर्मसंगत लगी, व्यावहारिक और वैज्ञानिक लगी। इसमें अंधविश्वास के लिए रंचमात्र भी अवकाश नहीं दिखा। गुरुदेव कहते हैं या बुद्ध ने कहा है या तिपिटक में लिखा है इसलिए अंधश्रद्धा से मान लेने का कहीं कोई आग्रह नहीं। जो कहा गया उसे बुद्धि के स्तर पर समझो और फिर अनुभूति के स्तर पर जानो, तब स्वीकार करो। बिना जाने, बिना समझे, बिना अनुभव किये, अंधेपन से स्वीकार मत करो।

आर्यसमाज ने मुझे बुद्धिवादी बनाया और अंधविश्वासों से दूर हटाया। यही जीवन की एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। पर विपश्यना तो इससे कहीं आगे बढ़ गयी। बुद्धिजन्य शुष्क दार्शनिक विवादों और आर्द्र भक्ति के भावावेश से विमुक्त करके इसके आध्यात्मिक क्षेत्र का यथार्थ अनुभव करना सिखाया। जितना-जितना सत्य अनुभूति पर उतरा उतना-उतना स्वीकारते हुए आगे बढ़ता गया और उससे सूक्ष्मतर सत्यों को अनुभूति पर उतारता गया। जितना-जितना अनुभूति पर उतरा उसे स्वीकारते हुए यह जांचता गया कि मनोविकार दुर्बल हो रहे हैं या नहीं! उनका निर्मूलन हो रहा है या नहीं! वर्तमान के प्रत्यक्ष सुधार को महत्त्व देने वाली यह शिक्षा युक्तियुक्त लगी। यह स्पष्ट समझ में आने लगा कि वर्तमान सुधर रहा है तो भविष्य अपने आप सुधरेगा। लोक सुधर रहा है तो परलोक सुधरेगा ही। यह भी खूब समझ में आने लगा कि अपने मन को मैला करने की शतप्रतिशत जिम्मेदारी स्वयं अपनी है। कोई बाह्य अदृश्य शक्ति इसे क्यों मैला करती भला? अतः इसे सुधारने का दायित्व भी अपना ही है। गुरु की कृपा इतनी ही है कि उसने बड़ी करुणा से हमें मार्ग आख्यात कर दिया। कदम-कदम चलना तो स्वयं हमें ही पड़ेगा। कोई अन्य हमें कंधे

पर उठा कर मुक्त अवस्था तक पहुँचा देगा, इस धोखे से सर्वथा मुक्ति मिली। यह सच्चाई अनुभूति के स्तर पर स्पष्ट होती चली गयी।

इस विद्या ने अदृश्य देवी-देवताओं के प्रति घृणा या द्वेष जगाना नहीं सिखाया, बल्कि उनके प्रति मैत्रीभाव रखना सिखाया। **अपनी मुक्ति अपने हाथ, अपना परिश्रम अपना पुरुषार्थ;** के भाव ने अहंभाव नहीं जगने दिया बल्कि अपनी जिम्मेदारी के प्रति विनम्र सजगता ही जगायी। परावलंबन के स्थान पर स्वावलंबी होने का बोध कल्याणकारी लगा। **'स्वावलंब की एक झलक पर न्योछावर कुबेर का कोष';** किसी कवि के ये बोल स्मरण होते ही तन मन पुलकायमान हो उठा। अतः जहां तक साधना का प्रश्न है, संदेह के लिए रंचमात्र भी गुंजाइश नहीं रही। संदेह होता भी क्यों? प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या? प्रत्यक्ष लाभ जो हो रहा था। जीवन ही बदल गया। जैसे एक नया जन्म हुआ।

मुझे लगा कि द्वितीय बुद्ध शासन को आरंभ करने वाला प्रथम वर्ष मेरे सौभाग्य का सूर्योदय बन कर आया और प्रथम बुद्ध शासन का अंतिम वर्ष मेरे लिए इस भाग्योदयी सूर्य के शुभागमन की पूर्व सूचना देता हुआ प्रत्यूष की लालिमा लेकर आया। मैं धन्य हुआ।

बुद्धवाणी का अध्ययन

विपश्यना विद्या को नितांत निर्दोष पाकर मेरे मन में यह तीव्र जिज्ञासा जागी कि जिसके व्यावहारिक पक्ष में कहीं रंचमात्र भी दोष नहीं दीखता, उसके मूल सैद्धांतिक पक्ष को भी देखना चाहिए। मूल बुद्धवाणी का अध्ययन करना चाहिए। उसमें ऐसे दोष अवश्य छिपे होंगे जिनके कारण बुद्ध की शिक्षा हमारे देश में इतनी बदनाम हुई और स्वामी शंकराचार्य तथा उन जैसे प्रकांड विद्वानों द्वारा इसे भारत से निष्कासित किया गया। अन्यथा कोई कारण नहीं कि मेरी भांति सारा देश बुद्ध को तो पूज्य माने, परंतु उनकी शिक्षा को सर्वथा त्याज्य। इस रहस्यमयी गुत्थी को सुलझाने के लिए मैंने अपने अति व्यस्त जीवन में से समय निकाल कर इस परंपरा का साहित्य पढ़ना आरंभ किया।

विपश्यना के पूर्व बुद्ध की शिक्षा को अग्राह्य मानने के कारण मैंने कभी कोई बौद्ध ग्रंथ नहीं पढ़ा था। यहां तक कि भदंत आनंदजी द्वारा मुझे दी गयी 'धम्मपद' की प्रति भी मेरे टेबल पर तीन वर्ष तक बिना पढ़े पड़ी रही। अतः पहले इसे ही पढ़ कर देखा। एक-एक पद पढ़ता गया। जैसे विपश्यना में धर्म का सर्वथा शुद्ध स्वरूप प्रकट हुआ, वैसे ही धम्मपद के एक-एक पद में सार्वजनीन सत्य धर्म की शुद्धता के ही दर्शन हुए। इतना ही नहीं बल्कि पढ़ते-पढ़ते अनेक बार तन और मन पुलक-रोमांच से भर उठता था। हृदय हर्षातिरेक से उल्लसित हो उठता था।

तदनंतर एक-एक करके बुद्धवाणी के अन्य ग्रंथ पढ़ता गया। सभी को सर्वथा निर्दोष पाया, धर्म की शुद्धता से परिपूर्ण पाया। इससे पहले द्वितीय युद्ध के पश्चात बरमा लौटने पर गीताप्रेस से प्रकाशित गीता, रामायण, महाभारत तथा कुछ एक पुराणों के भी कुछ-कुछ अंश देख गया था। परंतु १९५५ में विपश्यना विद्या सीखने पर जब बुद्धवाणी का पारायण किया तब उसे सर्वथा दोषशून्य पाया। तब अपने यहां के संस्कृत ग्रंथों का भी अधिक अध्ययन करने के लिए समय निकालने लगा। यह तुलनात्मक

अध्ययन अब तक भी चल रहा है। अब तो मेरे अनेक साधक शिष्य जो पालि अथवा छांदस तथा संस्कृत भाषा के विद्वान हैं इस क्षेत्र में अनुसंधान करते हुए मेरी विपुल सहायता करने लगे हैं। अतः कार्यभार बहुत बढ़ जाने पर भी जो सुविधाएं उपलब्ध हैं उनके कारण बहुत-सी जानकारी बढ़ी है।

अब तक दोनों परंपराओं का जितना भी अध्ययन अनुशीलन हो सका है उससे इतना स्पष्ट होता है कि बुद्ध की शिक्षा पर सदियों से लगे लांछनों का कोई पुष्ट आधार नहीं दीख रहा। जो भी लांछन लगे हैं उनमें से कुछ तो इतने छिछले हैं कि उनकी निराधारता को समझने में देर नहीं लगी। कुछ एक के लिए गहराई से छानबीन करनी पड़ी। यह एक महत्त्वपूर्ण गंभीर शोध का विषय है कि आखिर ये बेबुनियादी लांछन लगे ही कैसे? इस विषय पर सरसरी तौर पर निगाह डालने पर दो तथ्य सामने आये।

बुद्ध की मूल शिक्षा का लोपः ये लांछन तब लगे जबकि मूल बुद्धवाणी का समग्र वाङ्मय और विपश्यना की कल्याणी शिक्षा सदियों पहले देश से सर्वथा विलुप्त हो चुकी थी। ये दोनों बुद्ध के बाद लगभग ५०० वर्ष तक ही अपने देश में शुद्ध रूप में कायम रहीं। तदनंतर क्षीण होते-होते सर्वथा लुप्त हो गयीं। इस विद्या के अभ्यास और मूल वाणी के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत हुआ कि लांछन लगाने वालों को बुद्ध की मूल शिक्षा का यथार्थ ज्ञान नहीं था। जो भी लांछन लगे वे सही जानकारी न होने के कारण ही लगे। बुद्ध की मूल शिक्षा भारत से कैसे विलुप्त हो गयी, यह भी अपने आप में शोध का एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। इसके अनेक संभावित कारणों में से एक कारण श्रमणों और ब्राह्मणों का पारस्परिक विग्रह भी हो सकता है। श्रमण और ब्राह्मण दोनों भारत की प्राचीनतम सांस्कृतिक परंपराएं हैं। दोनों अपने आप में स्वतंत्र हैं। दोनों में बहुत समानता है परंतु दोनों के मौलिक आधार भिन्न-भिन्न होने के कारण दोनों में पारस्परिक मतभेद और विग्रह-विवाद प्राचीन समय से चले आ रहे हैं।

व्यक्तिगत गुणवत्ता के आधार पर श्रमण और ब्राह्मण दोनों को एक-समान पूज्य घोषित करते हुए भगवान बुद्ध ने इन दोनों परंपराओं के समन्वय का विपुल प्रयास किया। श्रमण-ब्राह्मण के जुड़वां शब्दों का बार-बार प्रयोग करके दोनों को समीप लाने का सराहनीय प्रयत्न किया।

उनके बाद सम्राट अशोक ने भी भगवान बुद्ध का अनुकरण करते हुए दोनों की एकता बनाये रखने का भरसक प्रयत्न किया। उसने भी श्रमण-ब्राह्मण अथवा ब्राह्मण-श्रमण के जुड़वां शब्दों का आदरणीय भाव से बार-बार प्रयोग किया और उन्हें अपने शिलालेखों और स्तंभलेखों पर उत्कीर्ण करवाया। अपने राज्य में सांप्रदायिक सौमनस्य कायम रखने के लिए उसने स्पष्ट शब्दों में आदेश दिया कि कोई व्यक्ति अपने संप्रदाय की महत्ता स्थापित करने के लिए किसी अन्य संप्रदाय की निंदा न करे। सभी संप्रदायों में जो-जो अच्छी बातें हैं उन्हें ही उजागर करे। यह स्पष्ट आदेश भी शिलालेखों पर उत्कीर्ण करवाया गया। यही कारण है कि उन दिनों इन दोनों परंपराओं में विग्रह-विवाद का कोई विशेष प्रसंग हमारे देखने में नहीं आता।

मौर्यवंश का अंत हो जाने के पश्चात लगता है इन दोनों का विग्रह-विवाद बहुत उग्र हो उठा। हम देखते हैं कि भगवान बुद्ध के लगभग २०० वर्ष पश्चात पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में द्वंद्व समास के उदाहरण देते हुए केवल बिल्ली और चूहे तथा सांप और नेवले जैसों का शाश्वत विरोध बतलाया है। परंतु पुष्यमित्र शुंग के राजपुरोहित पतंजलि ने उसी अष्टाध्यायी का महाभाष्य लिखते हुए इन उदाहरणों के साथ-साथ श्रमण और ब्राह्मण के शाश्वत विरोध का एक और उदाहरण जोड़ दिया। यानी ये दोनों सदा से एक-दूसरे के जानी दुश्मन बताये गये। यकायक ऐसी अप्रिय स्थिति कैसे पैदा हो गयी? ऐतिहासिक शोध का यह भी एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। इसी युग में विपश्यना और मूल बुद्धवाणी का ह्रास होना आरंभ हुआ। एक हजार वर्ष बीतते-बीतते न यह साहित्य बचा और न यह विद्या। ऐसी अवस्था में बुद्ध की शिक्षा पर जो मिथ्या लांछन लगते गये, वे लगे ही रह गये।

निराधार लांछनः जब दो सगे भाई भी आपस में लड़ते हैं तब निराधार लांछन लगा-लगा कर एक दूसरे पर कीचड़ उछालते हैं। लगता है यहां भी यही हुआ। झगड़े के दिनों जिसके माथे पर लगा कीचड़ नहीं धुल सका, वह लगा ही रह गया। अथवा धोया भी गया तो जिन शब्दों से धोया गया वह वाणी भी लुप्त हो गयी। परिणामतः लांछन की कालिमा लगी ही रह गयी। आगे चल कर लोगों ने इसे ही सत्य मान लिया।

भ्रम-भ्रांतिवश, अज्ञानवश अथवा जानबूझ कर द्वेषभावनावश जो भी लांछन लगाये गये वे पिछले हजार-पंद्रह सौ वर्षों में अनगिनत बार दोहराये जाते रहे। अत: देश के प्रकांड से प्रकांड पंडित, समझदार से समझदार लोग भी इन लांछनों को सही मान कर अपनी राय भी वैसी ही व्यक्त करते रहे हैं। जनसाधारण का तो इन लांछनों को सत्य मानना स्वाभाविक ही था। अनेक सदियों से सर्वमान्य चले आ रहे इन लांछनों की वैज्ञानिक जांच सर्वथा निष्पक्षभाव से की जानी आवश्यक लगी। और यही किया गया।

देश की सुरक्षा

अनुसंधान के जिन विभिन्न क्षेत्रों को प्राथमिकता दी गयी उनमें देश की सुरक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण विषय को भी ध्यान में रखा गया कि क्या बुद्ध की शिक्षा से देश की सुरक्षा खतरे में पड़ी? या कि इस शिक्षा द्वारा भविष्य में भी देश की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है? *(इस सच्चाई को समझने के लिए अनुसंधानपूर्ण पुस्तक* **"राजधर्म"** *देखें।)* यदि ऐसा है तो मुझे ही नहीं, किसी भी देशभक्त को ऐसी शिक्षा स्वीकार्य नहीं होनी चाहिए। और यदि ऐसा नहीं है तो इसको ले कर जो मिथ्या भ्रांतियां फैली हैं उनका पुरजोर निराकरण किया जाना चाहिए। एक सर्वथा निर्दोष महापुरुष पर लगाये गये मिथ्या दोषारोपण को दोहराते रहने के जघन्य पाप से हमें मुक्त होना चाहिए। इसी में हमारा कल्याण समाया हुआ है। इसी में देश तथा देशवासियों का कल्याण समाया हुआ है।

पूर्व भूमिका

आत्मकथन का यह विशद विवरण बुद्ध की सही शिक्षा के संपर्क में आने के पूर्व की मेरी मानसिकता का पुनरवलोकनमात्र है। इससे यह समझा जा सकता है कि मैं कैसी मनोदशा को लिए हुए पहले पहल विपश्यना में सम्मिलित हुआ था और तदनंतर ऐतिहासिक सच्चाइयों के वैज्ञानिक अनुसंधान में संलग्न हुआ था।

१) बुद्ध के व्यक्तित्व के प्रति मेरा आदरभाव असीम था।

२) बुद्ध की जातिविरोधी शिक्षा को छोड़ कर उनकी दुःखवादी, निराशावादी, अनित्यवादी, अनात्मवादी, नास्तिकतावादी, नितांत निवृत्तिवादी तथा, विशेषतः, परम अहिंसावादी शिक्षाओं के प्रति मेरा मानस अत्यंत शंकालु था। मेरी यह मान्यता थी कि इस शिक्षा के कारण देश की बहुत हानि हुई, देश दुर्बल और गुलाम हुआ।

३) यद्यपि मैं यह भी समझता था कि इस दुर्बलता और गुलामी का एक लघु कारण यह भी था कि हिंदी की रीतिकालीन शृंगाररस की कविताओं ने देश के शासकों को अपने उत्तरदायित्व से विमुख करके विलासी बना दिया था। दूसरा कारण यह भी था कि जातिपांतिजन्य ऊंच-नीच की सामाजिक दुर्व्यवस्था के कारण देश में जो एकजुटता आनी चाहिए थी, वह नहीं आ पायी। परंतु मुख्य कारण तो बुद्ध की परम अहिंसावादी शिक्षा ही थी, जिसे देश की आम जनता और हमारे सभी प्रबुद्ध नेता आज तक मानते चले आ रहे हैं।

४) यद्यपि मैं यह भी देख रहा था कि बुद्ध की उसी शिक्षा ने पड़ोसी देशों की वह दुर्दशा नहीं की, जो कि भारत की हुई। ऐसा क्यों हुआ?

५) यह तथ्य भी मेरे सामने था कि जिस भगवद्गीता ने **"तस्माद् युद्धस्व भारत"** के रणघोष का दो हजार वर्षों तक प्रबल प्रचार किया, फिर भी

इसके मुकाबले बुद्ध की अहिंसा से ही देश अधिक प्रभावित हुआ और फलस्वरूप गुलाम होता चला गया। ऐसा क्यों हुआ?

६) इन सब प्रश्नों के बावजूद देश के सभी बुजुर्गों की भांति मैं भी बुद्ध की वैयक्तिक महानता को स्वीकारता हुआ उनकी शिक्षा के प्रति संशयालु ही था।

७) मेरा यह सौभाग्य रहा कि मन में ऐसे संशय थे, इसी कारण मैं अत्यंत सजग होकर विपश्यना की गहन स्वानुभूतियों के आधार पर तथा बुद्धवाणी के गंभीर समीक्षात्मक अध्ययन के आधार पर ही इन संशयों से पूर्णतया मुक्त हुआ, किसी सांप्रदायिक अंधविश्वास के आधार पर नहीं।

हिंदी

- निर्मल धारा धर्म की - (पांच दिवसीय प्रवचन) रु. ५५/-
- प्रवचन सारांश (शिविर-प्रवचन) रु. ४५/-
- जागे पावन प्रेरणा रु. ८०/-
- जागे अंतर्बोध रु. ५०/-
- धर्मः आदर्श जीवन का आधार रु. ४०/-
- तिपिटक में सम्यक संबुद्ध, भाग-२ रु. १३०/
- धारण करे तो धर्म रु. ७०/-
- क्या बुद्ध दुक्खवादी थे? रु. ३५/-
- मंगल जगे गृही जीवन में रु. ४०/-
- धम्मवाणी संग्रह (पालि गाथाएं एवं हिंदी अनु.) रु. ४०/-
- विपश्यना पगोडा स्मारिका रु. १००/-
- सुत्तसार भाग १ (दीघ एवं मज्झिम निकाय) रु. ९५/-
- सुत्तसार भाग २ (संयुत्तनिकाय) रु. ५०/-
- सुत्तसार भाग ३ (अंगुत्तर एवं खुद्दकनिकाय) रु. ४५/-
- धन्य बाबा! रु. ३५/-
- कल्याणमित्र सत्यनारायण गोयन्का (व्यक्तित्व और कृतित्व) रु. ५०/-
- पातंजल योगसूत्र रु. ५०/-
- आहुनेय्य, पाहुनेय्य, अंजलिकरणीय - डॉ. ओम प्रकाश जी रु. ३०/-
- राजधर्म [कुछ ऐतिहासिक प्रसंग] रु. ३५/-
- आत्म-कथन भाग-१ रु. ३५/-
- लोक गुरु बुद्ध रु. १०/-
- देश की बाह्य सुरक्षा रु. ०५/-
- गणराज्य की सुरक्षा कैसे हो! रु. ०६/-
- शाक्यों और कोलियों के गणतंत्र का विनाश क्यों हुआ? रु. १०/-
- अंगुत्तर निकाय, भाग-१ रु. १००/-
- केंद्रीय कारागृह जयपुर, विपश्यना का प्रथम जेल शिविर रु. ३०/-
- विपश्यना : लोकमत भाग-१ रु. ५५/-
- विपश्यना : लोकमत भाग-२ रु. ४५/-
- अग्रपाल राजवैद्य जीवक रु. २०/-
- मंगल हुआ प्रभात (हिंदी दोहे) रु. ५५/-
- पथ-प्रदर्शिका रु. २/-
- विपश्यना क्यों? रु. १/-
- सम्राट अशोक के अभिलेख रु. ५०/-
- आचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का का संक्षिप्त जीवन-परिचय रु. २०/-
- अहिंसा किसे कहें? रु. १५/-
- लकुण्डक भद्दिय रु. १०/-
- गौतम बुद्धः जीवन-परिचय और शिक्षा रु. २५/-
- भगवान बुद्ध की साम्प्रदायिकता-विहीन शिक्षा रु. १०/-
- बुद्ध-जीवन-चित्रावली रु. ३३०/-
- भगवान बुद्ध के अग्रश्रावक महामोग्गल्लान रु. ३५/-
- क्या बुद्ध नास्तिक थे? रु. ८५/-
- तिपिटक में सम्यक संबुद्ध, (६ भागों में) भाग-१ रु. ४५/-, भाग-२ रु. ५०/-, भाग-३ रु. ५५/-, भाग-४ रु. ४५/-, भाग-५ रु. ४५/-, भाग-६ रु. ५५/-
- महामानव बुद्ध की महान विद्या विपश्यना का उद्गम और विकास (११६ चित्रों का संग्रह) सजिल्द रु. ६२५/-
- भगवान बुद्ध के महाश्रावक महाकस्सप (धुतांगधारियों में 'अग्र') रु. ४०/-
- महामानव बुद्ध की महान विद्या विपश्यना का उद्गम और विकास रु. १४५/-
- भगवान बुद्ध के अग्रउपासक अनाथपिण्डिक रु. ५०/-
- भगवान बुद्ध की अग्रश्राविका किसागोतमी रु. ३०/-
- चित्त गृहपति एवं हत्थक आळवक रु. ३०/-
- खुशियों की राह रु. १५०/-
- विसाखा मिगारमाता रु. ३५/-
- मगधराज सेनिय बिम्बिसार रु. ४५/-
- बुद्धसहस्रनामावली (पालि एवं हिंदी) रु. ३५/-
- आनन्द – भगवान बुद्ध के उपस्थाक रु. १२०/-
- जीने की कला रु. ७०/-
- परम तपस्वी श्री रामसिंह जी रु. ५५/-
- भगवान बुद्ध की अग्रउपासिकाएं खुज्जुत्तरा एवं सामावती तथा उत्तरानन्दमाता रु. २५/-
- विपश्यना पत्रिका संग्रह भाग - १ रु. ८०/-
- विपश्यना पत्रिका संग्रह भाग - २ रु. ७५/-
- आदर्श दंपति नकुलपिता एवं नकुलमाता रु. २५/-

- धम्म-वंदना (पालि गाथाएं, हिंदी अनुवाद) रु. ४५/-
- धम्मपद (संशोधित हिंदी अनुवाद सहित) रु. ४५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (समीक्षा एवं भाषानुवाद) रु. ५५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (भाषानुवाद) रु. ३५/-
- बुद्धगुणगाथावली (पालि) रु. ३०/-
- बुद्धसहस्सनामावली (पालि) रु. १५/-
- प्रारंभिक पालि रु. ८५/-
- प्रारंभिक पालि की कुंजी रु. ५०/-
- जागो लोगां जगत रा (राजस्थानी दूहा) रु. ४५/-
- परिभाषा धरम री (राजस्थानी) रु. १०/-
- ५ राजस्थानी पुस्तिकाओं का सेट रु. ५/-
- विश्व विपश्यना स्तूप का संदेश (हिंदी, मराठी, अंग्रेजी) रु. १०/-

मराठी

- जगण्याची कला रु. ७०/-
- जागे पावन प्रेरणा रु. ८०/-
- प्रवचन सारांश रु. ४०/-
- धर्मः आदर्श जीवनाचा आधार रु. ४०/-
- जागे अंतर्बोध रु. ६५/-
- निर्मळ धारा धर्माची रु. ४५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (भाषानुवाद) रु. ३०/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (समीक्षा) रु. ४०/-
- मंगलमय गृहस्थ-जीवन रु. ३५/-
- भगवान बुद्धाची सांप्रदायिकता-विहीन शिकवणुक रु. १०/-
- बुद्धजीवन-चित्रावली रु. ३३०/-
- आनंदाच्या वाटेवर रु. १५०/-
- आत्म-कथन भाग-१ रु. ५०/-
- अग्रपाल राजवैद्य जीवक रु. २०/-
- महामानव बुद्धाची महान विद्या विपश्यनाः उगम आणि विकास रु. १२५/-
- लोक गुरु बुद्ध रु. ०६/-
- लकुण्डक भद्दिय रु. १२/-
- प्रमुख विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयंका यांचा संक्षिप्त जीवन-परिचय रु. १८/-

गुजराती

- प्रवचन सारांश रु. ४५/-
- धर्मः आदर्श जीवननो आधार रु. ४५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त रु. २०/-
- जागे अंतर्बोध रु. ७५/-
- धारण करे तो धर्म रु. ७०/-
- जागे पावन प्रेरणा रु. १००/-
- क्या बुद्ध दुःखवादी थे? रु. ३०/-
- विपश्यना शा माटे? (पुस्तिका) रु. ०२/-
- मंगल जगे गृही जीवन में रु. ३५/-
- निर्मल धारा धर्म की रु. ६५/-
- बुद्धजीवन-चित्रावली रु. ३३०/-
- लोक गुरु बुद्ध रु. ०६/-
- भगवान बुद्ध की साम्प्रदायिकता-विहीन शिक्षा रु. १०/-

अन्य भाषाओं में

- द आर्ट ऑफ लिविंग (तमिळ) रु. ६०/-
- डिस्कोर्स समरीज (तमिळ) रु. ३०/-
- ग्रेसियस फ्लो ऑफ धम्म (तमिळ) रु. २५/-
- मंगल जगे गृही जीवन में (तेलगु) रु. ३०/-
- प्रवचन सारांश (बंगाली) रु. ३५/-
- धर्मः आदर्श जीवन का आधार (बंगाली) रु. ३०/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (बंगाली) रु. ९०/-
- प्रवचन सारांश (मलयालम) रु. ४५/-
- निर्मल धारा धर्म की (मलयालम) रु. ४५/-
- जीने का हुनर (उर्दू) रु. ७५/-
- धर्मः आदर्श जीवन का आधार (पंजाबी) रु. ५०/-

पालि तिपिटक सेटः

अङ्गुत्तरनिकाय (अजिल्द) (१२ ग्रंथ) रु. १५००/-
खुद्दकनिकाय - सेट १ (९ ग्रंथ) रु. ५४००/-
दीघनिकाय अभिनवटीका (रोमन) (भाग १ और २) रु. १०००/-

English Publications

- Sayagyi U Ba Khin Journal Rs. 225/-
- Essence of Tipitaka by U Ko Lay Rs. 130/-
- The Art of Living by Bill Hart Rs. 85/-
- The Discourse Summaries Rs. 60/-
- Healing the Healer by Dr. Paul Fleischman Rs. 35/-
- Come People of the World Rs. 40/-
- Gotama the Buddha: His Life and His Teaching Rs. 45/-
- The Gracious Flow of Dharma Rs. 40/-
- Discourses on Satipaṭṭhāna Sutta Rs. 80/-
- The Wheel of Dhamma Rotates Rs. 850/-
- Vipassana : Its Relevance to the Present World Rs. 110/-
- Dharma: Its True Nature Rs. 70/-
- Vipassana : Addictions & Health (Seminar 1989) Rs. 70/-
- The Importance of Vedanā and Sampajañña Rs. 135/-
- Pagoda Seminar, Oct. 1997 Rs. 80/
- Pagoda Souvenir, Oct. 1997 Rs. 50/-
- A Re-appraisal of Patanjali's Yoga- Sutra by S. N. Tandon Rs. 85/-
- The Manuals Of Dhamma by Ven. Ledi Sayadaw Rs. 205/-
- Was the Buddha a Pessimist? Rs. 65/-
- Psychological Effects of Vipassana on Tihar Jail Inmates Rs. 80/-
- Effect of Vipassana Meditation on Quality of Life (Tihar Jail) Rs. 60/-
- For the Benefit of Many Rs. 160/-
- Manual of Vipassana Meditation Rs. 80/-
- Realising Change Rs. 140/-
- The Clock of Vipassana Has Struck Rs. 130/-
- Meditation Now : Inner Peace through Inner Wisdom Rs. 85/-
- S. N. Goenka at the United Nations Rs. 20/-
- Defence Against External Invasion Rs. 10/-
- How to Defend the Republic? Rs. 6/-
- Why Was the Sakyan Republic Destroyed? Rs. 12/-
- Mahāsatipaṭṭhāna Sutta Rs. 65/-
- Pali Primer Rs. 95/-
- Key to Pali Primer Rs. 55/-
- Guidelines for the Practice of Vipassana Rs. 2/-
- Vipassana In Government Rs. 1/-
- The Caravan of Dhamma Rs. 90/-
- Peace Within Oneself Rs. 10/-
- The Global Pagoda Souvenir 29 Oct.2006 (English & Hindi) Rs. 60/-
- The Gem Set In Gold Rs. 75/-
- The Buddha's Non-Sectarian Teaching Rs. 15/-
- Acharya S. N. Goenka An Introduction Rs. 25/-
- Value Inculcation through Self-Observation Rs. 35/-
- Glimpses of the Buddha's Life Rs. 330/-
- Pilgrimage to the Sacred Land of Dhamma (Hard Bound) Rs. 750/-
- An Ancient Path Rs. 100/-
- Vipassana Meditation and the Scientific World View Rs. 15/-
- Path of Joy Rs. 200/-
- The Great Buddha's Noble Teachings The Origin & Spread of Vipassana (Small) Rs. 160/-
- Vipassana Meditation and Its Relevance to the World (Coffee Table Book) Rs. 800/-
- The Great Buddha's Noble Teachings The Origin & Spread of Vipassana (HB) Rs. 650/-
- Buddhaguṇagāthāvalī (in three scripts) Rs. 30/-
- Buddhasahassanāmāvalī (in seven scripts) Rs. 15/-
- English Pamphlets, Set of 9 Rs. 11/-
- Set of 10 Post Card Rs. 35/-
- Gotama the Buddha: His Life and His Teaching (French) Rs. 50/-
- Meditation Now: Inner Peace through Inner Wisdom (French) Rs. 80/-
- For the Benefit of Many (French) Rs. 195/-
- For the Benefit of Many (Spanish) Rs. 125/-
- The Art of Living (Spanish) Rs. 130/-
- Path of Joy (German, Italian, Spanish, French) Rs. 300/-

संपर्कः विपश्यना विशोधन विन्यास, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, जि. नाशिक, महाराष्ट्र. फोनः ०२५५३-२४४०७६, २४४०८६, २४३७१२, २४३२३८. फैक्सः ०२५५३-२४४१७६. (दक्षिण भारतीय भाषाओं में अनुवादित विपश्यना साहित्य, स्थानीय केंद्रों पर उपलब्ध है) Email: vri_admin@dhamma.net.in; **विपश्यना विशोधन विन्यास के प्रकाशन अब ऑनलाइन भी खरीदे जा सकते हैं। कृपया देखें www.vridhamma.org**

विश्वभर में विपश्यना के निम्नलिखित केंद्र हैं। इन केंद्रों पर प्रायः हर माह दस दिवसीय आवासीय शिविर आयोजित होते हैं। इच्छुक व्यक्ति किसी भी केंद्र से भावी शिविर-कार्यक्रमों की जानकारी प्राप्त करके, अपनी सुविधानुसार सम्मिलित हो सकते हैं:- **विपश्यना साधना केंद्र**

प्रमुख केंद्र = धम्मगिरि, धम्मतपोवन : विपश्यना विश्व विद्यापीठ, इगतपुरी-४२२४०३, नाशिक. फोनः [९१] (**०२५५३**) २४४०७६, २४४०८६, २४३७१२, २४३२३८; फैक्सः ०२५५३-२४४१७६. Website: www.vri.dhamma.org, Email: <info@giri.dhamma.org> (केवल कार्यालय के समय अर्थात सुबह १० बजे से सायं ५ बजे तक).

धम्मनासिकाः संपर्कः १) **नाशिक विपश्यना केंद्र,** म.न.पा. जलशुद्धिकरण केंद्र के सामने, शिवाजीनगर, सातपुर, (पोस्ट-YCMOU), नाशिक-४२२२२२. संपर्कः फोनः (०२५३) ६५१६-२४२, ३२०३-६७७, मोबाइलः ९८२२५-१३२४४, Email: info@nasika.dhamma.org

धम्मसरिताः विपश्यना केंद्र, जीवन संध्या मंगल संस्थान, मातोश्री वृद्धाश्रम, सौरगांव, पोस्ट पडघा, ता. भिवंडी, जि. ठाणे-४२११०१ (खडावली मध्य रेल्वे स्टेशन के पास). फोनः (**०२५२२**) ६९५३०१, **संपर्कः** +९१ ७७९८३-२४६५९, ७७९८३-२५०८६.

धम्ममनमोदः मनमाड विपश्यना केंद्र, अनकाई किला स्टेशन के पास, पो. अनकाई, ता. येवला, जि. नाशिक-४२२ ४०३ **संपर्कः** (०२५९१) २२५१४१-२३१४१४.

धम्मवाहिनीः मुबई परिसर विपश्यना केंद्र, गांव रूंदे, टिटवाला (पूर्व) कल्याण, जि. ठाणे. **संपर्कः संपर्कः** मोबाईलः ९७३३०-६९९७८. केवल कार्यालय के दिन– १२ से सायं ६ तक.

धम्मसाकेतः विपश्यना केंद्र, नालंदा स्कूल के पास, कानसई रोड, सुभाष टेकड़ी, उल्हासनगर-४२१००४, जि. ठाणे, महाराष्ट्र

धम्मविपुलः विपश्यना साधना केंद्र, सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट, प्लॉट नं. ९१ए; सेक्टर २६, पारासिक हिल, सीबीडी बेलापुर, नवी मुंबई ४०० ६१४. फोनः (०२२) २७५२-२२७७. Email: dhammavipula@gmail.com

धम्मपत्तनः एस्सेल वर्ल्ड के पास, गोराई खाड़ी, बोरीवली (पश्चिम) मुंबई – ४०० ०९१ व्यवस्थापक, फोनः (९१) (०२२) २८४५-२२३८, ३३७४-७५०१, मोबा. ९७३३०-६९९७५, (सुबह ११ से सायं ५ बजे तक); टेलि-फैक्सः (०२२) ३३७४-७५३१, Email: info@pattana.dhamma.org; Website: www.pattana.dhamma.org

धम्मसरोवरः खान्देश विपश्यना केंद्र, गेट नं. १६६, डेडरगांव जलशुद्धिकरण केंद्र के पास, मु.पो. तिखी-४२४ ००२, जिला- धुळे, (०२५६२) २०३४८२, ६९९५७३. मोबा. ९२२५४-६१०२१. **संपर्कः** फोनः २२२८६१, मोबा. ९९२२६-०७७१८, ९४०३४-२४३३३, ९४२२७-७७९०२. Email: info@sarovara.dhamma.org

धम्मानन्दः पुणे विपश्यना केंद्र, मरकल गांव के पास, आलंदी से ८ कि.मी. मोबा. कार्यालय ९२७१३-३५६६८. व्यवस्थापक मोबा. ९४२०४-८२८०५. **संपर्कः** पुणे विपश्यना समिति, नेहरू स्टेडियम के सामने, आनंद मंगल कार्यालय के पास, दादावाडी, पुणे-४११००२. फोनः (**०२०**) २४४६८९०३, २४४३६२५०; टेलि/फैक्सः २४४६४२४३. Email: info@ananda.dhamma.org Website:www.pune.dhamma.org;

धम्मपुण्णः संपर्कः पुणे विपश्यना समिति, दादावाडी, नेहरू स्टेडियम के सामने, आनंद मंगल कार्यालय के पास, पुणे-४११००२. फोनः (०२०) २४४३६२५०. २४४६८९०३. फैक्सः २४४६४२४३; Email: info@punna.dhamma.org

धम्मालयः दक्खिन विपश्यना अनुसंधान केंद्र, रामलिंग रोड, आलते पार्क, आलते, ता. हातकणंगले, जि. कोल्हापुर, पिनः ४१६२२३. फोनः **०२३०**-२४७१६७, २४७३८३, Email: info@alaya.dhamma.org. संपर्कः कार्यालयः २१०१/१९ इ, जयहिंद अपार्टमेंट, लक्ष्मीनगर, कोल्हापुर-४१६००५, फोनः(२३१) २५३०९९९, मोबा. ९७६७४-१३२३२.

धम्मअनाकुलः विपश्यना साधना केंद्र, खापरखेड़ फाटा, तेल्हारा-४४४१०८ जि. अकोला. **संपर्कः** १) विपश्यना चैरिटेबल ट्रस्ट, शेगांव, अपना बाजार, मेन रोड, शेगांव, जि. बुलडाना. फोनः ९५७९८-६७८९०, ९८८१२-०४१२५. २) श्री महेंद्र सिंह आनंद, मोबाइलः ९४२२१-८१९७०. Email: info@anakula.dhamma.org

धम्मअजयः विपश्यना साधना केंद्र, ग्राम - अजयपूर, पो. चिचपल्ली, मुल रोड, चंद्रपुर, Email: dhammaajaya@gmail.com **संपर्कः** १) श्री घरडे, सुगत नगर, नगीनाबाग वार्ड नं. २ जि. चंद्रपुर पिन-४४२४०१. मोबाइलः ८००७१५१०५०, ९४२१७-२१००६, २) श्री प्रीतिकमल पाटील, मोबाइलः ९४२१७-२१००६, ९८२२५-७०४३५, ९३७०३१२६७३,

धम्ममल्लः संपर्कः श्री. शेलके, सिद्धार्थ सोसायटी, यवतमाळ, ४४५००१, फोनः ९४२२८-६५६६१.

धम्मभूसनः विपश्यना साधना समिति, शांतिनगर, ओमकार कॉलोनी, कोटेचा हायस्कूल के पास, जि. जलगांव, भुसावल ४२५२०१, Email: info@bhusana.dhamma.org, **संपर्कः** मोबा. ९८२२९-१४०५६.

धम्मअजन्ताः अजंता अंतर्राष्ट्रीय विपश्यना समिति, एम. जी. एम. मेडिकल कालेज कैम्पस, एन-६, सिडको, औरंगाबाद-४३१००३. फोनः (०२४०) २३५००९२, २४८०१९४. Email: vipassana@emgm.org **संपर्कः** १) श्री रायबोले, फोनः (०२४०) २३४१८३६. २) श्री के. एन. पटेल, फोनः (निवास) (०२४०) २३५४२२३, (कार्या.) २३३३१३६. मोबाईलः ९४२२२-११३४४.

धम्मनागः नागपुर विपश्यना केंद्र – माहुरझरी गांव, नागपुर-कलमेश्वर रोड के पास, नागपुर; **संपर्कः** फोनः **०७१२**-२४५८६८६, २४२०२६१, मोबा. ९४२३४-०५६००; फैक्सः २५३९७१६. Email: info@naga.dhamma.org

धम्मसुगतिः संपर्कः १) श्री नारनवरे, एकायनो मग्गो धम्म प्रशिक्षण संस्था, सुगतनगर, नागपुर-१४. फोनः (०७१२) २६३०११५, फैक्सः २६५०८६७. मोबा. ९४२२१-२९२२९. २) सुरेंद्र राऊतः २६३२९१८. मोबा. ९२२६९-९६०८७.

धम्मवसुधाः विपश्यना केंद्र, हिवरा पोस्ट झडशी, ता. सेलु, जि. वर्धा **संपर्कः** १) श्री एवं सौ बांते, मोबा. ९३२६७३२५५०, ९३२६७३२५४७. २) श्री काटवे, मोबा. ९७३००६९७२६, Email: dhammavasudha@yahoo.com.in

धम्म छत्तपतिः फलटन, सातारा, महाराष्ट्र

धम्म आवासः लातुर विपश्यना समीती, आर. टी. ओ आफीस के पास, वसंत विहार कालोनी, बाभळगाव रोड, लातूर-४१३५३१ **संपर्कः** १) श्री द्वारकादास भुतडा, मोबा. ९६७३२५९९००, ०२३८२-२५९२८४, २) श्री आकाश कामदार, मोबा. ९९७०२-७७७०१.

धम्म निरंजनः विपश्यना साधना केंद्र, नेरली कुशता धाम नेरली. (नांदेड से ५ कि. मी. की दुरी पर) **संपर्कः** १) श्री एस. एम. जोंधले, मोबाइल: ९४२२१८९३१८. २) डॉ. कुलकर्णी, फोनः (०२४६२) २५२६५९. मोबाइल: ९४२२१७३२०२.

धम्मथलीः विपश्यना केंद्र, पो.बॉ. २०८, जयपुर-३०२००१, राजस्थान, फोनः **[९१] ०१४१**-२६८०२२०, मोबा. ०-९६१०४-०१४०१, ०९६०२८-४८८९६. फैक्सः २५७६२८३. Email: info@thali.dhamma.org

धम्ममरुधराः विपश्यना साधना केंद्र, लहरिया रिसोर्ट के पीछे, पाल-चौपासनी लींक रोड, चोखा, जोधपुर-३४२००९. मोबा. +९१-९३१४७२७२१५, +९१-९८२८१३११२०, फैक्सः +९१-२९१-२७४६४३५. Email: info@marudhara.dhamma.org **संपर्कः** श्री नेमीचंद भंडारी, ४१, अशोक नगर, पाल लींक रोड, जोधपुर-३४२००३. मोबा.: +९१-९८२९०२७६२१,

धम्मपुब्बजः चूरू (राजस्थान) **पुब्बज भुमी विपश्यना ट्रस्ट,** बलेरी रोड, (चूरू से ६ कि.मी.) चूरू (राजस्थान): **संपर्कः** १) श्री श्रवण कुमार फुलवारी, सी-८६, सामुदायीक भवन के पास अग्रसेन नगर, चूरू, मोबा. ०९४१४६-७६०६१. Email: gk.churu@gmail.com २) श्री सुरेश खन्ना, ६५ इंदिरा कालोनी, वनी पार्क, जयपुर, मोबा. ९४१३१-५७-५६. Email: sureshkhanna56@yahoo.com

धम्मअजरामरः विपश्यना केंद्र, वीर तेजाजी नगर, दौराई, अजमेर-३०५००३; फोनः (०१४५) २४४३६०४. **संपर्कः** श्री कैलाश बैरवाल, मोबा. ९४१३२२८३४०, ९४६१५६१३४४, ९००११९६५५६. Email: kailashbairwal@yahoo.com

धम्मपुष्करः विपश्यना केन्द्र, ग्राम रेवत (केडेल), पुष्कर पर्वतसर रोड, पुष्कर, जि अजमेर. मोबा. +९१-९४१३३-०७५७०. फोनः +९१-१४५-२७८०५७०. **संपर्कः** १) श्री रवि तोषणीवाल, मोबा. ०९८२९०-७१७७८, Email: info@toshcon.com २) श्री अनिल धारीवाल, मोबा. ०९८२९०-२८२७५. फैक्सः ०१४५-२७८७१३१.

धम्मसोतः विपश्यना साधना संस्थान, राहका गांव, (निम्मोद पोलीस पोस्ट के पास) बल्लभगढ़-सोहना रोड, (सोहना से १२ कि.मी.), जिला- गुडगांव, सोहना, हरियाणा. मोबा. ९८१२६५५५९९, ९८१२६४१४००. (बल्लभगढ़ और सोहना से बस उपलब्ध है।) संपर्कः विपश्यना साधना संस्थान, रुम न. १०१५, १० वां तल, हेमकुंठ/मोदी टावर्स, ९८ नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-११००१९. फोनः **(०११)** २६४८-५०७१, २६४८-५०७२, २६४५-२७७२. फैक्सः २६४७०६५८. Email: info@sota.dhamma.org

धम्मपट्टान : विपश्यना साधना केंद्र, कम्मासपुर, जि. सोनीपत, हरियाणा, पिन-१३१००१. मोबा. ०९९९१८७४५२४, **संपर्कः** ऊपर धम्मसोत के संपर्क पर.

धम्मकारुणिकः विपश्यना साधना संस्थान, गव्हरमेंट स्कूल के पास, गाँव नेवल, डाक सैनिक स्कूल कुंजपुरा, करनाल-१३२००१; **संपर्कः** श्री वर्मा, ५, शक्ति कालोनी, एस.बी.आई. के पास, करनाल-१३२००१. टेली-फैक्सः ०१८४-२२५७५४३, २२५७५४४; मोबा. ९९९२०-००६०१. Email: info@karunika.dhamma.org;

धम्म हितकारीः रोहतक, हरियाणा

धम्मसिखरः हिमाचल विपश्यना केंद्र, धर्मकोट, मैकलोडगंज, धर्मशाला, जिला- कांगरा, पिन-१७६२१९ (हि. प्र.) फोनः **०१८९२-** २२१३०९, २२१३६८. मोबा. (सायं ४ से ५) ०९८५७०-१४०५१. Email: info@sikhara.dhamma.org;

धम्मसलिलः देहरादून विपश्यना केंद्र, जनतनवाला गांव, देहरादून कॅन्ट तथा संतला देवी मंदिर के पास, देहरादून-२४८००१. फोनः **०१३५**-२१०४५५५, २७१५१८९. **संपर्कः** १) श्री भंडारी, १६ टैगोर विला, चक्राता रोड, देहरादून-२४८००१. फोनः (०१३५) २७१५१८९, फैक्सः २७१५५८०. २) श्री गुप्ता, फोनः २६५३३६६. Email: info@salila.dhamma.org;

धम्मसुवत्थीः जेतवन विपश्यना साधना केंद्रः कटरा बाईपास रोड, बुद्धा इंटर कालेज के सामने, श्रावस्ती, पिन-२७१८४५; फोनः **(०५२५२)** २६५४३९, ०९३३५८३३३७५ Email: info@suvatthi.dhamma.org **संपर्कः** श्री मुरली मनोहर, मातन हेलीया. मोबाईल: ०९४१५०-३६८९६, ०९४१५७-५१०५३.

धम्मलक्खणः लखनऊ विपश्यना केंद्र, अस्ती रोड, बक्शी का तालाब, लखनऊ-२२७२०२. फोनः (०५२२) २९६८५२५. मोबा. ०९७९४५४५३३४. Email: info@lakkhana.dhamma.org **संपर्कः** १) श्री जैन, ए-१०१, हेम्प्टन कोर्ट्स अपार्टमेंट्स, पिकैडिली होटल के पीछे, आलमबाग, लखनऊ-२२६ ००५, (उ.प्र.) फोनः नि. **(०५२२)**-२४२-४४०८, मोबा. ०९३३५९-०६३४१, ०९४१५०-३६८९६, ०९४१५७-५१०५३.

धम्मधजः पंजाब विपश्यना केंद्र, आनंदगढ़, पो. मेहलांवली-१४६११०, जिला- होशियारपुर. फोनः **०१८८२-**२७२३३३, मोबाइल: ९४६५१-४३४८८. Email: info@dhaja.dhamma.org

धम्म तिहारः नई दिल्ली जेल न. ४ तिहार, केन्द्रीय कारागृह, नई दिल्ली

धम्म रक्खकः नई दिल्ली नजफगढ़, पुलिस ट्रेनिंग कालेज

धम्मचक्कः विपश्यना साधना केंद्र, खरगीपुर गांव, पो. पियरी, चौबेपुर, (सारनाथ), वाराणसी. मोबाः ०९३०७०९३४८५, Email: info@cakka.dhamma.org **संपर्कः** १) श्री गुप्ता, फोनः ०५४२-३२४६०८९. मोबा. ९३३६९-१४८४३, (प्रातः १० से सायं ६.) २) श्री प्रेम श्रीवास्तव, मोबाईल: ९२३५४-४१९८३.

धम्मकल्याणः कानपुर (उ. प्र.) अंतर्राष्ट्रीय विपश्यना साधना केंद्र, ढोड़ी घाट, हनुमान मंदिर के पास, गाँव एमा, पो. रूमा, कानपुर नगर- २०९४०२, (सेन्ट्रल रेलवे स्टेशन से २३ कि० मी० एवं रमादेवी चौराहा से १५ कि० मी० दूरी पर स्थित) फोनः ०७३८८-५४३७९३, ०७३८८-५४३७९५, मोबा. ०८९९५४८०१४९. Email: dhamma.kalyana@gmail.com, **संपर्कः** १) श्री अशोक साहू, मोबा. ०९८३९१-३८०८४, २) डा. ओ. पी गुप्ता, मोबा. ०९४५०१-३२४३६.

धम्मसिन्धुः कच्छ विपश्यना केंद्र, ग्राम- बाड़ा, मांडवी, जिला- कच्छ-३७०४७५. फोनः (कार्या.) (०२८३४) २७३३०३,

फैक्स: २२४४८८, २८८९११; **संपर्कः** फोनः **(०२८३४)** २२३०७६, २२३४०६, Email: info@sindhu.dhamma.org

धम्मकोट : सौराष्ट्र विपश्यना केंद्र, कोठारिया रोड, लोथडा गांव, राजकोट, गुजरात. फोनः ०२८१ -२७८२०४०, मोबाईलः ९३२७९-२३५४० (राजकोट से १५ कि.मी.) **संपर्कः** फोनः ०२८१- २२२०८६१६, मोबाईलः ९४२७२-२१५९१, फैक्सः २२२१३८४. Email: info@kota.dhamma.org

धम्मदिवाकरः उत्तर गुजरात विपश्यना केंद्र, मीट्ठा गाव, ता. और जिला- मेहसाणा, गुजरात; फोनः **(०२७६२)** २७२८००. Email: info@divakara.dhamma.org **संपर्कः** फोनः **(०२७६२)** २५४६३४, २५३३१५. मोबा. ०९४२९२३३०००,

धम्मसुरिन्दः सुरेंद्रनगर, गुजरात **संपर्कः**१) महासतीजी, फोनः (०२७५२) २४२०३०. २) डॉ. बविशी, फोनः २३२५६४.

धम्मभवनः संपर्कः १) 'धम्मभवन', ५ कालिंदी पार्क, अकोटा अतिथिगृह के पीछे, अकोटा, बड़ोदा-३९००२०; फोनः (०२६५) २३४११८१. २) विट्ठलभाई पटेल, फोनः (०२६९२) मोबा. ९८२५०-२८०५७. Email: vvsou@hotmail.com

धम्म अम्बिका : विपश्यना ध्यान केंद्र, (१५ कि० मी० नवसारी तथा बिलीमोरा रेलवे स्टेशन) १) जी एल/१२ निलांजन काम्प्लेक्स, राधा किशन मंदिर के सामने, नूतन सोसायटी के पास, महर्षि अरविंद मार्ग दुधिया तलाव, नवसारी, २) श्री रत्नशीभाई के. पटेल, मोबा. ०९८२५०४४५३६, ३) श्री मोहनभाई पटेल, मोबा. ०९५३७२६६०९.

धम्मपीठः गुर्जर विपश्यना केंद्र, ग्राम- रनोडा, ता. धोलका, जिला- अहमदाबाद- ३८७८१०, मोबा. ८९८००-०१११०, ८९८००-०१११२, ९४२६४-१९३९७. फोनः (०२७१४) २९४६९०. **संपर्कः** श्रीमती शशी तोडी, मोबा. ९८२४०-६५६६८. Email: info@pitha.dhamma.org

धम्मखेत्तः विपश्यना अन्तर्राष्ट्रीय साधना केंद्र, (१२.६ किमी.) माइल स्टोन नागार्जुन सागर रोड, कुसुम नगर, वनस्थलीपुरम हैदराबाद-५०००७०, (आंध्र प्रदेश) फोनः **(०४०)** २४२४०२९०, ३२४६०७६२, ०९४९१५९४२४७, फैक्सः २४२४१७४६. Email: info@khetta.dhamma.org

धम्मसेतुः विपश्यना साधना केंद्र, ५३३, पझान- थंडलम रोड, थीरुनीरमलाई रोड, द्वारा, थीरुमुदीवक्कम, चेन्नई-६०००४४. फोनः ०४४-२४७८०९५३, २४७८०९५२, मोबाइलः ९४४४०-२१६२२, **संपर्कः** फोनः ०४४-४३४०-७०००, ४३४०-७००१, फैक्सः ९१-४४-४२०१-११७७. मोबा. ०९८४०७-५५५५५. Email: setu.dhamma@gmail.com;

धम्मपफुल्लः बैंगलोर विपश्यना केंद्र, अलूर-५६२१२३. (गाँव अलूर, अलूर पंचायत कार्यालय के पास) तुमकूर हाईवे के सामने दासनपुरा बैंगलोर उत्तर तालुका, (कर्नाटक). फोनः **(०८०)** २३७१-२३७७, २३७१७१०६, ९१-९७३९५९१५८० (सुबह १० से सायं ६ तक), ९२४२३-५७४२४ (सुबह ९ से दोपहर २ तथा सायं ४ से ६ तक), एवं ९३४३५-४५३८८ (सुबह ११ से दोपहर ३ तक) Email: info@paphulla.dhamma.org [बैंगलोर रेल्वे स्टेशन से २३ की.मी. दूर; मजेस्टिक बस स्टैंड के प्लेटफार्म २० से नं. २५६, २५८, २५८सी, २५८ के बस से तुमकूर हाईवे पर हिमालया ड्रग भवन तक, तथा वहां से अलूर गांव के लिए ऑटोरिक्शा मिलते हैं।]

धम्मनागाज्जुनः विपश्यना साधना केंद्र, हिल कॉलोनी, नागार्जुन सागर, जि. नालगोंडा, आंध्र प्रदेश, (हैदराबाद से १४०.४ किमी, बुद्धपार्क के पास, हिल कॉलोनी से हैदराबाद की तरफ ३ किमी, दूरी पर) पिन-५०८२०२. फोनः (८६८०) २७७९९९ मोबाः ०९९६३७७५६४५, ९४४०१- ३९३२९. Email: info@nagajjuna.dhamma.org

धम्मनिज्झानः विपश्यना साधना केंद्र, इंदूर, पो. पोचाराम-५०३१८६, येदपल्ली मंडल, जि. निजामाबाद, फोनः **(०८४६७)** ३१६६६३, ९९०८५९६३३६. Email: info@nijjhana.dhamma.org

धम्मविजय : विपश्यना साधना केंद्र, विजयराय, पोस्ट- पेदावेगी मंडलम्, पिन-५३४४७५, जि. पश्चिम गोदावरी, (आंध्र प्रदेश). [विजयराय गांव एलूरु से १५ किमी, एलूरु चिंतलपुडी रोड पर. विजयराय बस स्टॅन्ड से ३ की. मी. दूरी पर धम्मविजया सेंटर हैं, बस स्टॅन्ड से ऑटो/टॅक्सी उपलब्ध हैं।] फोनः **(०८८१२)** २२५५२२; मोबा. ९४४१४-४९०४४

धम्मारामः विपश्यना अंतर्राष्ट्रीय साधना केंद्र, कुमुदावल्ली गांव, भीमावरम-भानुकू रोड, (भीमावराम के पास), मंडल -पाल कोडेरु, जि. पश्चिम गोदावरी, पिन-५३४२१०. फोनः ०८८१६- २३६५६६. Email: info@rama.dhamma.org

धम्म कोण्डञ्ञ : विपश्यना साधना केंद्र, कोंडापुर (व्हाया) संगारेड्डी, जि. मेडक - ५०२३०६. **संपर्कः** मोबा. ९३९२०-९३७९९, ९३९८३-१६१५५.

धम्मकेतनः विपश्यना साधना केंद्र, पो. मम्परा (व्हाया) कोडुकुलान्जी, चेन्गन्नूर, जि. अलपुज्झा. केरल-६८९५०८. फोनः (०४७९) २३५-१६१६. Email: info@ketana.dhamma.org **संपर्कः** १) (कार्यालय) **केरल विपश्यना समिति,** मायथ्री, नेरेचथरा लाइन, पॅरनडोर रोड, एलमकरा पो. ऑ. कोची-६८२ ०२६. केरल फोनः (०४८४) २५३९८९१ २) श्री बी. रविंद्रन, मोबा. ९८४६५-६९८९१.

धम्म मधुराः मदुराई (धर्म की मधुरता) मदुराई

धम्मकानन : धम्मकानन विपश्यना केंद्र, वैनगंगा तट, रेंगाटोला, पो. गर्रा, बालाघाट. फोनः (०७६३२) २९२४६५; **संपर्कः** १) श्री हरीदास मेश्राम, १२६, रतन कुटी, गंगानगर रोड, बुढ़ी, बालाघाट-४८१००१, (म. प्र.) फोनः **(०७६३२)** २३९१६५, मोबाईलः ०९४२५१४००१५, Email: dineshbgt@hotmail.com २) श्री खोब्रागडे, मोबा. ०९४२४३-३६२४१.

धम्मकेतु : विपश्यना केंद्र, पोस्ट बॉक्स १६, थनौद, व्हाया-अंजौरा, जिला-दुर्ग, छत्तीसगढ़-४९१००१; (म.प्र.) फोनः (०७८८) ३२०५५१३, मोबा. ९५८९८४२७३७. Email: info@ketu.dhamma.org **संपर्कः** १) धम्मकेतु, (उपरोक्त केंद्र के पते पर) तथा मोबा. ०९४२५२-३४७५७, ०९०९८९-२०२४६.

धम्मबल : विपश्यना साधना केंद्र, भेडाघाट थाने से एक किलोमीटर, बापट मार्ग, भेडाघाट, जबलपुर. मोबा. ९३००५०६२५३. **संपर्कः** विपश्यना ट्रस्ट, जबलपुर, द्वारा - मधु मेडिकल स्टोर्स, मेडिसिन काम्प्लेक्स, शास्त्रीब्रिज के पास, मॉडेल रोड, बैंक ऑफ बड़ौदा के बाजू में, जबलपुर-०२ फोनः ०७६१-४००६२५२, मोबा. ९९८१५-९८३५२, ९४२४३-५५२१४.

धम्मलिच्छवी : वैशाली विपश्यना केंद्र, लदौरा ग्राम, लदौरा पाक्री, मुजफ्फरपुर-८४३११३. फोनः ०९९३११६१२९०.

संपर्कः श्री गोयन्का, जेनीथ आटो सर्विस, अघोरिया बाजार, पो. रामना, मुजफ्फरपुर, पिन-८४२००२. फोनः **०६२१**-२२४०-२१५, २२४७७६०. Email: info@licchavi.dhamma.org

धम्मबोधिः बोधगया अंतर्राष्ट्रीय विपश्यना साधना केंद्र, मगध विश्वविद्यालय के समीप, पो. मगध विश्वविद्यालय, गया-ढोबी रोड, बोधगया-८२४२३४, मोबा. ९४७१६-०३५३१, Email: info@bodhi.dhamma.org **संपर्कः** फोनः **(०६३१)** २२००४३७, ९९५५९-११५५६.

धम्मपुब्बोत्तरः मिजोरम विपश्यना साधना केंद, कमलानगर-२, सीएडीसी, चांगतै-सी, जि. लोंगतलाई, मिजोरम -७९६७७२. Email: mvmc.knagar@gmail.com, **संपर्कः** दिगंबर चकमा, फोनः ०३७२-२५६३६८३. मोबा. ०९४३६७-६३७०८,

धम्मपुरीः त्रिपुरा विपश्यना मेडिटेशन सेंटर, पो. मचमरा, जि. उत्तर त्रिपुरा, पिनः ७९९२६५. मोबा. ०९८६२६-४६७६४, Email: Info@Puri.dhamma.org **संपर्कः** श्री देवान मोहन, फोनः ०३८१-२३००४४१, मोबा. ०९८६२१-५४८८२, ०९४०२५-२७१९१.

धम्मगंगाः विपश्यना केंद्र, सोदपुर, हरिश्चन्द्र दत्ता रोड, पनिहटी, बारो मन्दिर घाट, कोलकाता-७००११४. फोनः **(०३३)** २५५३२८५५. Email: info@ganga.dhamma.org **संपर्कः** कार्यालयः श्री काजड़िया, २२, बोनफील्ड लेन, दूसरा तल्ला, कोलकाता-७००००१, फोनः **(०३३)** २२४२३२२५/४५६१ (२) श्री तोदी, १२३A, मोतीलाल नेहरू रोड, कोलकाता-२९ फोन नि. २४८५४१७९. मोबा. ९८३१४-४७७०१.

धम्मबंगः कोलकाता, पश्चिम बंगाल **संपर्कः** धम्मगंगा केंद्र.

धम्मपालः धम्मपाल विपश्यना केंद्र, केरवा डैम के पीछे, ग्राम दौलतपुरा, भोपाल-४६२ ०४४, Email: dhammapal@airtelmail.in; **संपर्कः** मोबा. ९८९३२-८९०४९, फोनः (०७५५) २४६८०५३, २४६२३५१, फैक्सः २४६-८१९७. ऑन लाइन आवेदन; http://www.dhamma.org/en/schedules/schpala.shtml

धम्मालवा : इंदौर (म.प्र.) विपश्यना केंद्र, ग्राम - जंबूडी हप्सी, गोमटगिरी के आगे, पितृ पर्वत के सामने, हातोद रोड, इंदौर-४५२००३. **संपर्कः** १) इंदौर विपश्यना इंटरनेशनल फाउंडेशन, ट्रस्ट, "लाभगंगा" ५८२, एम. जी. रोड इंदौर (म.प्र.) फोनः (०७३१) ४२७३३१३. Email: info@malava.dhamma.org; dhammamalava@gmail.com २) श्री शंभुदयाल शर्मा, मोबा. ९८९३१-२९८८८.

धम्मरत : (रतलाम से १५ कि.मी.) साई मंदीर के पीछे, ग्राम धमनोद ता. साईलन जि. रतलाम-४५७००१, फैक्सः ०७४१२ ४०३८८२, मोबा. ०९८२७५-३५२५७. Email: dhamm.rata@gmail.com **संपर्कः** रतलाम विपश्यना समिति, द्वारा डा वाधवानी क्लीनीक, ११७, स्टेशन रोड, रतलाम-४५७००१ मोबा. ०९९८१०-८४८२२, ९४२५३-६४९५६.

धम्मउपवनः बाराचकिया, बिहार **संपर्कः** फोनः निवास (०६२१) २४४ ९७५; ५५२१ ०७७०

धम्मउत्कलः विपश्यना साधना केंद्र, ग्राम चानबेरा पो. अमसेना, (व्हाया) खरियार रोड जिलाः नुआपाडा, उड़ीसा-७६६१०६, मोबा. ०९४०६२३७८९६, संपर्कः १) श्री. एस. एन. अग्रवाल, मोबा. ०९४३८६१०००७, २) श्री. पुरुषोत्तम जे. मोबा. ०९४३७०-७०५०५,

धम्मसिक्किमः विपश्यना साधना केंद्र, पो. ऑ. आहो सेन्ती, ग्राम, सेन्ती ईस्ट सिक्किम- ७३७१३५, **संपर्कः** शीलादेवी चौरसिया, मोबा. ०९८३०७-०६४८१, ०९७४८४-६१७८७, ०९४३४३-३९३०३, ०९४३४८-६२२२६. Email: basantigorsia@hotmail.com

धर्मशृंगः नेपाल विपश्यना केंद्र, मुहान पोखरी, बूढ़ानीलकंठ, पो. बा. १२८९६, काठमांडू, फोनः **९७७ (०१)** ४३७१६५५, ४३७१००७, ४२५०५८१, ४२२५४९०; निवासः ४२२४७२०, ४२२६३१४. Email: info@sringa.dhamma.org; **संपर्कः** फोनः २५०५८१, २२५४९०, नि.२२१२९०. फैक्सः २२४७२०, २२६३१४.

धम्मजननीः लुंबिनी विपश्यना केंद्र, लुंबिनी (पीस फ्लेम के पास), रुपनदेही, लुंबिनी अंचल, नेपाल. Email: info@janani.dhamma.org फोनः ९७७ (७१) ५८०२८२. **संपर्कः** नेपाल. फोनः **९७७ (७१)** ५४१५४९.

धम्मविराट : पूर्वांचल विपश्यना केंद्र, फुलबरी टोल, बस पार्क के दक्षिण की ओर इथारी- ७ संसरी, नेपाल; फोनः [९७७] (२५) ५८५५२१; Email: info@birata.dhamma.org; **संपर्कः** १) श्री मुंदडा, फोनः [९७७] (२१) ५२५४८६, ५२७६७१. फैक्सः ५२६४६६; २) श्री गोयल, फोनः दूकान [९७७](२५)५२३५२८, नि. ५२६८२९.

धम्मतराई : बीरगंज विपश्यना केंद्र, परवानीपुर, पारसा, नेपाल. Email: info@tarai.dhamma.org **संपर्कः** १) कार्यालयः संदीप बिल्डींग, आदर्श नगर, पो. बा. नं. ३२. फोनः ०५१-५२१८८४. फैक्सः ०५१-५८०४६५. मोबा. ९८०४२-४५७६

धम्मचितवन : चितवन विपश्यना केंद्र, मंगलपुर व्ही.डी.सी. वार्ड नं ८, विजयनगर बाजार के समीप, चितवन, नेपाल Email: info@citavana.dhamma.org **संपर्कः** १) श्री महाराजन, फोनः ९७७(५६) ५२०२९४, ५२८२९४

धम्मकीर्त्ति : कीर्तिपुर विपश्यना केंद्र, देवधोका, कीर्तिपुर, नेपाल. **संपर्कः** श्री महर्जन, समाल तोले, वार्ड नं. ६, कीर्तिपुर.

धम्मपोखरा : पोखर विपश्यना केंद्र, पचभैया लेखनाथ नगरपालिका, पोखरा, कसकी, नेपाल. **संपर्कः** श्री नारा गुरुंग फोनः [९७७] (०६१) ६९१९७२, मोबा. ९८४६२-३२३८३, ९८४१२-५५६८८. Email: info@pokhara.dhamma.org

Cambodia

Dhamma Laṭṭhikā, Battambang Vipassana Centre, Trungmorn Mountain, National Route 10, District Phnom Sampeau, Battambang, Cambodia **Contact:** Phnom-Penh office: Mrs. Nary POC, Street 350, #35, Beng Keng Kang III, Khan Chamkar Morn, Phnom-Penh, Cambodia. P.O. Box 1014 Phnom-Penh, Cambodia Tel. [855] (012) 689 732; poc_nary@hotmail.com; **Local Contact:** Off: Tel: [855] (536) 488 588, 2. Mr. Sochet Kuoch, Tel: [855] (092) 931 647, [855] (012) 995 269 Email: mientan2000@yahoo.co.uk and ms_apsara@yahoo.com

Hong Kong

Dhamma Muttā, G.P.O. Box 5185, Hong Kong Tel: 852-2671 7031; Fax: 852-8147 3312 Email: info@hk.dhamma.org

Indonesia

Dhamma Jāvā, Jl. H. Achmad No.99; Kampung Bojong, Gunung Geulis, Kecamatan Sukaraja, Cisarua-Bogor, Indonesia. Tel: [62] (0251) 827-1008; Fax: [62] (021) 581-6663; Website: www.java.dhamma.org **Course Registration Office Address:** IVMF (Indonesia Vipassana Meditation Foundation), Jl. Tanjung Duren Barat I, No. 27 A, Lt. 4, Jakarta Barat, Indonesia Tel : [62] (021) 7066 3290 (7am to 10pm); Fax: [62] (021) 4585 7618 Email: info@java.dhamma.org

Iran

Dhamma Īran, Teheran Dhamma House Tehran Mehrshahr, Eram Bolvar, 219 Road, No. 158 Tel: 98-261-34026 97; website: www.iran.dhamma.org Email: info@iran.dhamma.org

Israel

Dhamma Pamoda, Kibbutz Deganya-B, Jordan Valley, Israel **City Contact:** Israel Vipassana Trust, P.O. Box 75, Ramat-Gan 52100, Israel Website: www.il.dhamma.org/os/Vipassana-centre-eng.asp Email: info@il.dhamma.org

Dhamma Korea, Choongbook, Korea. Dabo Temple, 17-1, samsong-ri, cheongcheon-myun, gwaesan-koon, choongbook, Korea. Tel: +82-010-8912-3566, +82-010-3044-8396 Website: www.kr.dhamma.org Email: dhammakor@gmail.com

Japan,

Dhamma Bhānu, Japan Vipassana Meditation Centre, Iwakamiyoku, Hatta, Mizucho-cho, Funai-gun, Kyoto 622 0324 Tel/Fax: [81] (0771) 86 0765, Email: info@bhanu.dhamma.org

Dhammādicca, 782-1 Kaminogo, Mutsuzawa-machi, Chosei-gun, Chiba, Japan 299 4413. Tel: [81] (475) 403 611. Website: www.adicca.dhamma.org

Malaysia

Dhamma Malaya, Malaysia Vipassana Centre, Centre Address: Gambang Plantation, opp. Univ. M.P. Lebuhraya MEC, Gambang, Pahang, Malaysia **Office Address:** No., 30B, Jalan SM12, Taman Sri Manja, 46000 Petaling Jaya, Malaysia. Tel: [60] (16) 341 4776 (English Enquiry) Tel: [60] (12) 339 0089 (Mandarin Enquiry) Fax: [60] (3) 7785 1218; Website: www.malaya.dhamma.org Email: info@malaya.dhamma.org

Mongolia

Dhamma Mahāna, Vipassana center trust of Mongolia. Eronkhy said Amaryn Gudamj, Soyolyn Tov Orgoo, 9th floor, Suite 909, Mongolia Tel: [976] 9191 5892, 9909 9374; **Contact:** Central Post Office, P. O. Box 2146 Ulaanbaatar 211213, Mongolia Email: info@mahana.dhamma.org

Myanmar

Dhamma Joti, Vipassana Centre, Wingaba Yele Kyaung, Nga Htat Gyi Pagoda Road, Bahan, Yangon, Myanmar Tel: [95] (1) 549 290, 546660; Office: No. 77, Shwe Bon Tha Street, Yangon, Myanmar. Fax: [95] (1) 248 174 **Contact:** Mr. Banwari Goenka, Goenka Geha, 77 Shwe Bon Tha Street, Yangon, Myanmar Tel: [95] (1) 241 708, 253 601, 245 327, 245 201; Res. [95] (1) 556 920, 555 078, 554 459; Tel/Fax: Res. [95] (01) 556 920; Off. 248 174; Mobile: 95950-13929; Email: bandoola@mptmail.net.mm; goenka@ mptmail.net.mm Email: dhammajoti@mptmail.net.mm

Dhamma Ratana, Oak Pho Monastery, Myoma Quarter, Mogok, Myanmar **Contact:** Dr. Myo Aung, Shansu Quarter, Mogok. Mobile: [95] (09) 6970 840, 9031 861;

Dhamma Maṇḍapa, Bhamo Monastery, Bawdigone, Near Mandalay Arts &

Science University, 39th Street, Mahar Aung Mye Tsp., Mandalay, Myanmar Tel: [95] (02) 39694 Email: info@mandala.dhamma.org

Dhamma Maṇḍala, Yetagun Taung, Mandalay, Myanmar, Tel: [95] (02) 57655 **Contact:** Dr Mya Maung, House No 33, 25th Street, (Between 81 and 82nd Street), Mandalay, Myanmar Tel: [95] (02) 57655, Email: info@mandala.dhamma.org

Dhamma Makuṭa, Mindadar Quarter, Mogok.Mandalay Division, Myanmar. Tel: [95] (09) 80-31861. Email: info@joti.dhamma.org

Dhamma Manorama, Main road to Maubin University, Maubin, Myanmar. Tel: **Contact:** U Hla Myint Tin, Headmaster, State High School, Maubin, Myanmar. Tel: [95] (045) 30470

Dhamma Mahimā, Yechan Oo Village, Mandalay-Lashio Road, Pyin Oo Lwin, Mandalay Division, Myanmar. Tel: [95] (085) 21501. Email: info@mandala.dhamma.org

Dhamma Manohara, Aung Tha Ya Qr, Thanbyu-Za Yet, Mon State **Contact:** Daw Khin Kyu Kyu Khine, No.64 Aungsan Road, Set-Thit Qr, Thanbyu-Zayet, Mon State, Myanmar. Tel: [95] (057) 25607

Dhamma Nidhi, Plot No. N71-72, Off Yangon-Pyay Road, Pyinma Ngu Sakyet Kwin, In Dagaw Village, Bago District, Myanmar. **Contact:** Moe Mya Mya (Micky), 262-264, Pyay Road, Dagon Centre, Block A, 3rd Floor, Sanchaung Township, Yangon11111, Myanmar. Tel: 95-1-503873, 503516~9, Email: dagon@mptmail.net.mm

Dhamma Ñāṇadhaja, Shwe Taung Oo Hill, Yin Ma Bin Township, Monywa District, Sagaing Division, Myanmar **Contact:** Dhamma Joti Vipassana Centre

Dhamma Lābha, Lasho, Myanmar

Dhamma Magga, Near Yangon, Off Yangon Pegu Highway, Myanmar

Dhamma Mahāpabbata, Taunggyi, Shan State, Myanmar

Dhamma Cetiya Paṭṭhāra, Kaytho, Myanmar

Dhamma Myuradipa, Irrawadi Division, Myanmar

Dhamma Pabbata, Muse, Myanmar

Dhamma Hita Sukha Geha, Insein Central Jail, Yangon, Myanmar

Dhamma Hita Sukha Geha-2, Central Jail Tharawaddy, Myanmar

Dhamma Rakkhita, Thayawaddi Prison, Bago, Myanmar

Dhamma Vimutti, Mandalay, Myanmar

Philippines

Dhamma Phala, Philippines Email: info@ph.dhamma.org

Sri Lanka

Dhamma Kūṭa, Vipassana Meditation Centre, Mowbray, Hindagala, Peradeniya, Sri Lanka Tel/Fax: [94] (081) 238 5774; Tel: [94] (060) 280 0057; Website: www.lanka.com/dhamma/dhammakuta Email: dhamma@sltnet.lk

Dhamma Sobhā, Vipassana Meditation Centre Balika Vidyala Road, Pahala Kosgama, Kosgama, Sri Lanka Tel: [94] (36) 225-3955 Email: dhammasobhavmc@gmail.com

Dhamma Anurādha, Ichchankulama Wewa Road, Kalattewa, Kurundankulama, Anuradhapura, Sri Lanka. Tel: [94] (25) 222-6959; **Contact:** Mr. D.H. Henry, Opposite School, Wannithammannawa, Anuradhapura, Sri Lanka. Tel: [94] (25) 222-1887; Mobile. [94] (71) 418-2094. Website: www.anuradha.dhamma.org Email: info@anuradha.dhamma.org

Taiwan

Dhammodaya, No. 35, Lane 280, C hung-Ho Street, Section 2, Ta-Nan, Hsin She, Taichung 426, P. O Box No. 21, Taiwan Tel: [886] (4) 581 4265, 582 3932; Website: www.udaya.dhamma.org Email: dhammodaya@gmail.com

Dhamma Vikāsa, Taiwan Vipassana Centre - Dhamma Vikasa No. 1-1, Lane 100, Dingnong Road Laonong Village Liouguei Township Kaohsiung County

Taiwan Republic of China Tel: [886] 7-688 1878 Fax: [886] 7-688 1879 Email: info@vikasa.dhamma.org

Thailand,

Dhamma Kamala, Thailand Vipassana Centre, 200 Yoo Pha Suk Road, Ban Nuen Pha Suk, Tambon Dong Khi Lek, Muang District, Prachinburi Province, 25000, Thailand Tel. [66] (037) 403- 514-6, [66] (037) 403 185; Website: http://www.kamala.dhamma.org/ Email: info@kamala.dhamma.org

Dhamma Ābhā, 138 Ban Huay Plu, Tambon Kaengsobha, Wangton District, Pitsanulok Province, 65220, Thailand Tel : [66] (81) 605-5576, [66] (86) 928-6077; Fax : [66] (55) 268 049; Website: http://www.abha.dhamma.org/ Email: info@abha.dhamma.org

Dhamma Suvaṇṇa, 112 Moo 1, Tambon Kong, Nongrua District, Khonkaen Province, 40240, Thailand Tel [66] (08) 9186-4499, [66] (08) 6233-4256; Fax [66] (043) 242-288; Website: http://www.suvanna.dhamma.org/ Email: info@suvanna.dhamma.org

Dhamma Kañcana, Mooban Wang Kayai, Tambon Prangpley, Sangklaburi District, Kanchanaburi Province, Thailand Tel. [66] (08) 5046-3111 Fax [66](02) 993-2700 Email: info@kancana.dhamma.org

Dhamma Dhānī, 42/660 KC Garden Home Housing Estate, Nimit Mai Road, East Samwa Sub-district, Klongsamwa District, Bangkok 10510, Thailand Tel. [66] (02) 993-2711 Fax [66] (02) 993-2700 Email: info@dhani.dhamma.org

Dhamma Sīmanta, Chiengmai, Thailand **Contact:** Mr. Vitcha Klinpratoom, 67/86, Paholyotin 69, Anusaowaree, Bangkhen, BKK 10220 Thailand Tel: [66] (81) 645 7896; Fax: [66] (2) 279 2968; Email: vitchcha@yahoo.com Email: info@simanta.dhamma.org

Dhamma Porāṇo: A meditator has donated six acres of land near Nakorn Sri Dhammaraj (the name of the city), an important and ancient sea-port.

Dhamma Puneti, Udon Province, Thailand

Dhamma Canda Pabhā, Chantaburi, an eastern town about 245 kilometres from Bangkok

Australia & New Zealand,

Dhamma Bhūmi, Vipassana Centre, P. O. Box 103, Blackheath, NSW 2785, Australia Tel: [61] (02) 4787 7436; Fax: [61] (02) 4787 7221 Website: www.bhumi.dhamma.org Email: info@bhumi.dhamma.org

Dhamma Rasmi, Vipassana Centre Queensland, P. O. Box 119, Rules Road, Pomona, Qld 4568, Australia Tel: [61] (07) 5485 2452; Fax: [61] (07) 5485 2907 Website: www.rasmi.dhamma.org Email: info@rasmi.dhamma.org

Dhamma Pabhā, Vipassana Centre Tasmania, GPO Box 6, Hobart, Tasmania 7001, Australia Tel: [61] (03) 6263 6785; Website: www.pabha.dhamma.org Course registration & information: [61] (03) 6228-6535 or (03) 6266-4343 Email: info@pabha.dhamma.org

Dhamma Āloka, P. O. Box 11, Woori Yallock, VIC 3139, Australia Tel: [61] (03) 5961 5722; Fax: [61] (03) 5961 5765 Website: www.aloka.dhamma.org Email: info@aloka.dhamma.org

Dhamma Ujjala, Mail to: PO Box 10292, BC Gouger Street, Adelaide SA 5000, [Lot 52, Emu Flat Road, Clare SA 5453, Australia] **Tel Contact:** Anne Blizzard [61] (0)8 8278 8278; Email: info@ujjala.dhamma.org

Dhamma Padīpa, Vipassana Foundation of WA, Australia, Website: www.dhamma.org.au **Contact:** Andrew Parry C/- 13 Goldsmith Road, Claremont, WA 6010, Australia. Tel: [61]-(8)-9388 9151. Email: andparry@optusnet.com.au Email: info@padipa.dhamma.org

Dhamma Medinī, 153 Burnside Road, RD3 Kaukapakapa, Rodney District, New Zealand Tel: [64] (09) 420 5319; Fax: [64] (09) 420 5320; Website: www.medini.dhamma.org Email: info@medini.dhamma.org

Dhamma Passaddhi, Northern Rivers region, New South Wales Email: info@passaddhi.dhamma.org

Europe,

Dhamma Dīpa, Harewood End, Herefordshire, HR2 8JS, UK Tel: [44] (01989) 730 234; male AT bungalow: [44] (01989) 730 204; female AT bungalow: [44] (01989) 731 024; Fax: [44] (01989) 730 450; Website: www.dipa.dhamma.org Email: info@dipa.dhamma.org

Dhamma Padhāna, European Long-Course Centre, Harewood End, Herefordshire, HR2 8JS, UK Website: www.eu.region.dhamma.org/os username <oldstudent> password <behappy> Email: info@padhana.dhamma.org

Dhamma Dvāra, Vipassana Zentrum, Alte Strasse 6, 08606 Triebel, Germany Tel: [49] (37434) 79770; Website: www.dvara.dhamma.org Email: info@dvara.dhamma.org

Dhamma Mahī, France Vipassana Centre, Le Bois Planté, Louesme, F-89350 Champignelles, France. Tel: [33] (0386) 457 514; Fax [33] (0386) 457 620; Website: www.mahi.dhamma.org Email: info@mahi.dhamma.org

Dhamma Nilaya,, 6, Chemin de la Moinerie, 77120, Saints, France Tel/Fax: [33] 1 6475 1370; Mobile: 0609899079 Email: vcjuly2001@orange.fr

Dhamma Aṭala, Vipassana Centre, SP29, Lutirano 15 50034 Lutirano (Fi) Italy Tel: Off. [39] (055) 804 818; Website: www.atala.dhamma.org Email: info@atala.dhamma.org

Dhamma Sumeru, Centre Vipassana, No. 140, Ch-2610 Mont-Soleil, Switzerland Tel: [41] (32) 941 1670; Website: www.sumeru.dhamma.org Email: info@sumeru.dhamma.org Registration office: registration@sumeru.dhamma.org

Dhamma Neru, Centro de Meditación Vipassana, Cami Cam Ram, Els Bruguers, A.C.29, Santa Maria de Palautordera, 08460 Barcelona, Spain Tel: [34] (93) 848 2695; Website: www.neru.dhamma.org Email: info@neru.dhamma.org

Dhamma Pajjota, Dhamma Pajjota, Belgium, Light (or Torch) of Dhamma, Vipassana Centrum, Driepaal 3, 3650 Dilsen-Stokkem, Belgium. Tel: [32] (0) 89 518 230; Website: www.pajjota.dhamma.org Email: info@pajjota.dhamma.org

Dhamma Sobhana, Lyckebygården, S-599 93 Ödeshög, Sweden. Tel: [46] (143) 211 36; Website: www.sobhana.dhamma.org Email: info@sobhana.dhamma.org

Dhamma Pallava, Vipassana Poland **Contact:** Malgorzata Myc 02-798 Warszawa, Ekologiczna 8 m.79 Poland Tel: [48](22) 408 22 48 Mobile: [48] 505-830-915 Email: info@pl.dhamma.org

Dhamma Sukhakari, East Anglia (UK)

North America

Dhamma Dharā, VMC, 386 Colrain-Shelburne Road, Shelburne MA 01370-9672, USA Tel: [1] (413) 625 2160; Fax: [1] (413) 625 2170; Website: www.dhara.dhamma.org Email: info@dhara.dhamma.org

Dhamma Kuñja, Northwest Vipassana Center, 445 Gore Road, Onalaska, WA 98570, USA Tel/Fax: [1] (360) 978 5434, Reg Fax: [1] (360) 242-5988; Website: www.kunja.dhamma.org Email: info@kunja.dhamma.org

Dhamma Mahāvana, California Vipassana Center 58503 Road 225, North Fork, California, 93643 Mailing address: P. O. Box 1167, North Fork, CA 93643, USA Tel: [1] (559) 877 4386; Fax [1] (559) 877 4387; Website: www.mahavana.dhamma.org Email: info@mahavana.dhamma.org

Dhamma Sirī, Southwest Vipassana Center, 10850 County Road 155 A Kaufman, TX 75142, USA Mailing address: P. O. Box 7659, Dallas, TX 75209, USA Tel: [1] (972) 962-8858; Fax: [1] (972) 346-8020 (registration); [1] (972) 932-7868 (center); Website: www.siri.dhamma.org Email: info@siri.dhamma.org

Dhamma Surabhi, Vipassana Meditation Center, P. O. Box 699, Merritt, BC V1K 1B8, Canada Tel: [1] (250) 378 4506; Website: www.surabhi.dhamma.org Email: info@surabhi.dhamma.org

Dhamma Maṇḍa, Northern California Vipassana Center, Mailing address: P. O. Box 265, Cobb, Ca 95426, USA Physical address: 10343 Highway 175, Kelseyville, CA 95451, USA Tel: [1] (707) 928-9981; Website: www.manda.dhamma.org Email: info@manda.dhamma.org

Dhamma Suttama, Vipassana Meditation Centre 810, Côte Azélie, Notre-Dame-de-Bonsecours, Montebello, (Québec), J0V 1L0, Canada Tél. 1-819-423-1411, Fax. 1- 819- 423- 1312 Website: www.suttama.dhamma.org Email: info@suttama.dhamma.org

Dhamma Pakāsa, Illinois Vipassana Meditation Center, 10076 Fish Hatchery Road, Pecatonica, IL 61063, USA Tel: [1] (815) 489-0420; Fax [1] (360) 283-7068 Website: www.pakasa.dhamma.org Email: info@pakasa.dhamma.org

Dhamma Toraṇa, Ontario Vipassana Centre, 6486 Simcoe County Road 56, Egbert, Ontario, L0L 1N0 Canada Tel: [1] (705) 434 9850; Website: www.torana.dhamma.org Email: info@torana.dhamma.org

Dhamma Vaddhana, Southern California Vipassana Center, P.O. Box 486, Joshua Tree, CA 92252, USA. Tel: [1] (760) 362-4615;; Website: www.vaddhana.dhamma.org Email: info@vaddhana.dhamma.org

Dhamma Patāpa, Southeast Vipassana Trust, Jessup, Georgia, South East USA Website: www.patapa.dhamma.org

Dhamma Modana, Canada Tel: [1] (250) 483-7522; Website: www.modana.dhamma.org Email: info@modana.dhamma.org

Dhamma Karunā, Alberta Vipassana Foundation Tel: [1](403) 283-1889 Fax: [1](403) 206-7453 Email: registration@ab.ca.dhamma.org

Latin America,

Dhamma Santi, Centro de Meditação Vipassana, Miguel Pereira, Brazil Tel: [55] (24) 2468 1188. Website: www.santi.dhamma.org Email: info@santi.dhamma.org

Dhamma Makaranda, Centro de Meditación Vipassana, Valle de Bravo, Mexico Tel: [52] (726) 1-032017 Registration and information: Vipassana Mexico, P. O. Box 202, 62520 Tepoztlan, Morelos Tel/Fax: [52] (739) 395-2677; Website: www.makaranda.dhamma.org Email: info@makaranda.dhamma.org

Dhamma Pasanna, Melipilla, Chile Email: info@pasanna.dhamma.org

Dhamma Sukhadā, Buenos Aires, Argentina, **Contact:** Vipassana Argentina, Tel: [54] (11) 6385-0261; Email: info@ar.dhamma.org

Dhamma Veṇuvana, Centro de Meditación Vipassana, 90 minutes from Caracas, Sector Los Naranjos de Tasajera, Cerca de La Victoria, Estado Aragua, Venezuela. (See map on the website) Tel: [58] (212) 414-5678 For information and registration: Calle La Iglesia con Av. Francisco Solano, Torre Centro Solano Plaza, Of. 7D, Sabana Grande, Caracas, Venezuela. Phone: [58](212) 716-5988, Fax: 762-7235 Website: www.venuvana.dhamma.org Email: info@venuvana.dhamma.org

Dhamma Suriya, Centro de Meditación Vipassana, Cieneguilla, Lima, Perú Email: info@suriya.dhamma.org

South Africa

Dhamma Patākā, (Rustig) Brandwacht, Worcester, 6850, P. O. Box 1771, Worcester 6849, South Africa Tel: [27] (23) 347 5446; **Contact:** Ms. Shanti Mather, Tel/Fax: [27] (028) 423 3449; Website: www.pataka.dhamma.org Email: info@pataka.dhamma.org

Russia

Dhamma Dullabha: Avsyunino Village, Dhamma Dullabha (formerly camp "Druzba") 142 645 Russian Federation, Phones +7-968-894-23-92, +7-901-543-16-27

आचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का एवं श्रीमती इलायचीदेवी गोयन्का

श्री गोयन्काजी ने म्यंमा के महान विपश्यनाचार्य सयाजी ऊ बा खिन से सर्वप्रथम सन १९५५ में 'विपश्यना' साधना सीखी। तब से अभ्यास का क्रम जारी रहा। सन १९६९ में भारत आये। व्यापार-धंधे से सर्वथा अवकाश ग्रहण कर भारत के विभिन्न स्थानों पर इस साधना-विधि के दस-दिवसीय शिविर लगाते रहे। सन १९७६ में प्रमुख विपश्यना केंद्र 'धम्मगिरि' की स्थापना के पश्चात अब तक पूरे विश्व में लगभग १६५ विपश्यना केंद्र स्थापित हो चुके हैं। अन्य नये-नये स्थानों पर भी केंद्र खुलते जा रहे हैं। इनमें साधकों के लिए नि:शुल्क आवास तथा भोजनादि की स्थायी व्यवस्था रहती है। विपश्यना सिखाने का सारा व्यय कृतज्ञ साधकों के दान पर निर्भर रहता है। शिविरों का संचालन पूज्य गोयन्काजी तथा उनके द्वारा नियुक्त विश्व-भर के १२०० से अधिक सहायक आचार्यों द्वारा किया जाता है। हिंदी, अंग्रेजी के अतिरिक्त विश्व की अन्य ५३ भाषाओं में श्री गोयन्काजी के प्रवचनों का अनुवाद हुआ है और उनके माध्यम से विश्वभर में शिविरों का संचालन हो रहा है। शिविर-काल में साधकों को बाह्य संपर्क से दूर, शिविर-स्थल पर ही रहना अनिवार्य होता है।

ध्यान की यह विद्या सीखने के लिए हर संप्रदाय के लोग आते हैं - नर हों या नारी। बाल, वृद्ध, युवा सभी उम्र के लोग आते हैं। बहुत ऊंची शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति आते हैं और एकदम निरक्षर, अनपढ़ लोग भी। धनाढ्य भी आते हैं और दरिद्रनारायण भी। सरकारी वा गैर-सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी तथा हर क्षेत्र के व्यवसायी एवं उद्योगपति आते हैं। यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हर तबके के लोग आते हैं। किसी भी विपश्यना शिविर में समाज के हर वर्ग का यह अनूठा संगम बहुत विस्मयजनक होता है। इतनी विविधताओं के होते हुए भी सभी लोग इस विद्या से लाभान्वित होते हैं।

ISBN 978-81-7414-241-X

VRI - H2 3